प्रथम अध्याय : स्त्री-कविता और स्त्री विमर्श

प्रथम अध्याय : स्त्री-कविता और स्त्री विमर्श

i. स्त्री-कविता : स्वरूप एवं आशय

स्त्रियों द्वारा रचित कविता को 'स्त्री-कविता' कहना अब लगभग रूढ़ हो गया है। सामान्यत: स्त्री-कविता दो रूपों में उपलब्ध है। पहला, पुरुष रचनाकारों द्वारा स्त्री को या उनकी भावनाओं को केंद्र में रखकर लिखी गई कविता। दूसरे, स्वयं स्त्री रचनाकारों द्वारा रचित कविता। इस शोध का संबंध साहित्य में स्त्री कविता के दूसरे रूप अर्थात् स्त्री रचनाकारों द्वारा रचित कविताओं के संश्लेषण-विश्लेषण से है। प्रश्न उठता है कि 'स्त्री-कविता' पदबंध ही क्यों? जब हम साहित्य में स्त्री केन्द्रित रचनाओं को पढ़ते हैं, उस पर चिंतन-मनन करते हैं तो पाते हैं कि स्त्री की भूमिका समाज में प्रचलित पूर्वाग्रहों के अनुरूप ही होती है अथवा वह महज पुरुष के सम्मुख उसकी अनुगामिनी या मनोरंजन के निमित्त बनकर चित्रित होती हैं जहाँ इस रूढ़ि को तोड़ा भी गया तो वह सहानुभूति मात्र बनकर रह गई है : "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी / आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"[1] इसके विपरीत जब हम स्त्री की स्वानुभूत अभिव्यक्ति पर आते हैं तो स्थितियाँ वह नहीं रह जाती हैं। एक नयी दृष्टि, नया अनुभव-संसार और न्याय की आस, कि आखिर क्यों आपने अपने ही जैसे हाड़-मांस से बने इस 'मनुष्य' को जकड़बंदी बनाए रखा। हम भी मनुष्य हैं; यह अनुभव क्यों नहीं हो पाया। अर्थात् स्त्री विषयक कविता ही स्त्री-कविता है। स्त्री विषयकता को स्त्री के स्वानुभूत सत्य से ही जाना जा सकता है। स्त्री-कविता पदबंध का इससे पूर्व प्रयोग कुछेक इतिहासकारों-कवियों तथा आलोचकों ने भी किया है। 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' की रचयिता सुमन राजे ने स्त्री-कविता के पदबंध का प्रयोग करते हुए उसकी ऐतिहासिकता को भी अपनी पुस्तक में दर्शाया है। जगदीश्वर चतुर्वेदी और सुधा सिंह लेखकद्वय द्वारा संपादित पुस्तक 'स्त्री काव्यधारा' में भी स्त्री-कविता पदबंध का प्रयोग हुआ है। समकालीन दौर की प्रतिष्ठित कवयित्री अनामिका और सविता सिंह के लेखन में भी स्त्री-कविता पदबंध बार-बार आता है। 'स्त्री-कविता की पहचान' शीर्षक विषय पर

प्रोजेक्ट कार्य करते हुए रेखा सेठी जी ने भी स्त्री-कविता पदबंध का प्रयोग किया है। रेखा सेठी ने अपने शोध में उक्त पदबंध की साहित्यिक महत्ता और गंभीरता को भी व्याख्यायित किया है। वे लिखती हैं "मैंने स्त्री रचनाकारों की कविताओं पर अपने अध्ययन को केन्द्रित करने के कारण ही इसे स्त्री-कविता कहना उपयुक्त समझा लेकिन यह शंका बनी रही कि कविता के संदर्भ में 'स्त्री-कविता' से किस वैशिष्ट्य का बोध होगा? यह स्त्रियों की कविता है, स्त्री-मन की कविता या फिर स्त्री के प्रति सहानुभूतिपूर्ण स्वर की कविता, इस पर एकमत नहीं हुआ जा सकता। इस दृष्टि से 'स्त्री-कविता' का कोई निश्चय आशय नहीं है, हालाँकि ये सभी अंतर्ध्वनियाँ इस पदबंध में समाहित हैं। स्त्री-कविता का संबंध लैंगिक अस्मिता से अधिक उसके सामाजिक-सांस्कृतिक बोध तथा साहित्यिक परंपरा की विशिष्ट अभिव्यक्ति से है।"[2] अतः यह पदबंध स्त्री-कवियों एवं कविताओं के संदर्भ में एक नयी काव्य-दृष्टि का द्योतक है। स्त्री-कविता की मौलिकता उसकी प्रस्तुति एवं नवीन भाषिक विन्यास के कारण भी नवीन पदबंध की अपेक्षा रखती है।

काव्यरचना स्त्री के अंत:करण के शब्दबद्ध इतिहास के साथ ही एक विराम स्थल भी है जहाँ वे सहज हो कर अपनी बात रखती है; गुनगुनाती है तथा दुनिया-जहान की चिंता करती है। कविता उनके लिए अपना एक दूसरा घर है जहाँ केवल उनकी हुकूमत होती है। नि:संकोच भाव से वे यहाँ आवाजाही करती है, स्वयं को सुरक्षित महसूस करती है। स्त्री-कविता का स्वरूप साहित्येतिहास में अभी नया भले प्रतीत हो रहा हो लेकिन वास्तविक रूप में साहित्य की अजस्र धारा के साथ मंद गति से ही सही लेकिन निरंतर प्रवाहित होती रही है। समाज की पुरुषवादी एवं वर्चस्वशाली व्यवस्था में स्त्री-लेखन अथवा स्त्री-चिंतन के लिए कोई जगह नहीं थी। फलत: स्त्री-कविता पदबंध ही हमें खटकने लगता है जबकि निरंतर परिवर्तन के साथ ही साहित्य-समाज में प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटकों को स्वतंत्र रूप से स्थापित, वर्णित और पहचान की तसदीक स्त्री-कविता देती आयी है। ऐसे में 'स्त्री-कविता' पदबंध समस्त स्त्री-जाति की अस्मिता, अस्तित्व एवं आत्माभिव्यक्ति का द्योतक है; उनकी सांस्कृतिक उत्कर्ष की पहचान है... "स्त्री-

कविता जितना स्त्री-पक्ष को देखती है, उतना ही उसके पार भी। स्त्री रचनाकारों ने समाज और राजनीति को विषय बनाकर भी कविताएं लिखीं लेकिन स्त्री-कविता के इस पक्ष पर चर्चा बहुत कम हुई। ... ...स्त्री-कविता की सामाजिकता के समक्ष यह चुनौती रही कि स्त्री की वंचित सामाजिक स्थिति व असमानता को झेलने से उसके संसार में मच रहे उद्वेलन को गम्भीर समझ और सहानुभूति के साथ प्रस्तुत कर सके। स्त्री-कविता को लेकर यह एक मिथ है कि यह कविता स्त्री के दुख के बिम्ब को प्रस्तुत कर साहित्य में स्त्री के लिए स्पेस बनाती है। ऐसा करते हुए, वह और भी बहुत कुछ करती है जिसके विषय में साहित्य समीक्षाएं मौन हैं।"[3] हिंदी साहित्य में स्त्री-कविता अथवा स्त्रियों द्वारा रचित कविता की लिखित परंपरा सैद्धांतिक रूप से किसी साहित्य अथवा इतिहास की पुस्तक में नहीं मिलती। सुमन राजे की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' में ही सर्वप्रथम स्त्री-कविता की अविच्छिन्न परंपरा की पूरी तस्वीर देखने को मिलती है। सामान्य रूप में कहें तो हिंदी साहित्य का इतिहास पुरुषों का साहित्येतिहास है जहाँ स्त्रियों की वाणी बमुश्किल से देखी जाती है। जबकि लोक साहित्य की समृद्धि और संस्कार का गान स्त्रियों द्वारा ही गाया जाता रहा है। लेकिन इसे तथाकथित शिष्ट साहित्य से बहिष्कृत रखा गया। इस लिहाज से नब्बे का दशक एवं उस समय की वैश्विक घटनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इस समय न सिर्फ सामाजिक और राजनैतिक मूल्यों को पुनर्परिभाषित किया गया बल्कि नये-नये उद्घोषों के साथ साहित्य एवं साहित्य संबंधी चिंतन को भी विस्तृत रूप में रखा गया। अपनी जड़ों, स्वयं की अस्मिता, परंपरा-संस्कृति के आधार पर लोक-साहित्य को साहित्य का विशिष्ट अंग स्वीकार किया गया। नयी शिक्षा-व्यवस्था एवं लोकतांत्रिक परिवेश ने स्त्री-संसार के अलग रूप को हमारे समक्ष रखा जहाँ स्त्रियाँ शिक्षित, समर्थ और स्वावलंबी होने के साथ ही मूलभूत अधिकार और आत्मसम्मान हेतु तथा अपने साथ हुए अन्याय के खिलाफ प्रतिकार करती, चुनौती देती हुई दिखती हैं। स्त्री-कविता का स्वरूप इन्हीं मानदंडों से निर्मित होता हुआ आज वैश्विक परिदृश्य पर अपना मौलिक एवं सृजनात्मक छाप छोड़ रही है।

'स्त्री-कविता' पदबंध को प्रमुख कवयित्रियों अपने लेखों-साक्षात्कारों एवं वक्तव्यों में समय-दर-समय परिभाषित, व्याख्यायित तथा विश्लेषित किया है। इन कवयित्रियों द्वारा दी गई स्त्री-कविता के संदर्भ में अवधारणाओं को निम्नांकित रूप में देखा जा सकता है :

- "स्त्री-कविता के अंतर्गत, मेरे ख़याल से उन्हीं कविताओं को रखा जाना चाहिए जो स्त्री जीवन के विविध पक्षों और स्त्रियों के विशिष्ट अनुभवों, अहसासों को लेकर स्त्री कवियों ने लिखी हैं। स्त्रियों के जीवन की त्रासदियों, विडम्बनाओं, अँधेरों और उजालों को लेकर पुरुष कवियों ने भी कविताएं लिखी हैं और अच्छी कविताएं लिखी हैं, उनमें संवेदनशील प्रेक्षक की सह-अनुभूति और तदनुभूति हो सकती है, लेकिन वे स्त्री की दृष्टि से स्त्रियों के जीवन को नहीं देख सकते। अतः पुरुष कवियों की स्त्री जीवन पर केन्द्रित कविताएं स्त्री-कविता की श्रेणी में नहीं रखी जा सकतीं।"[4] [कात्यायनी, स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व (पाठ और संवाद), रेखा सेठी, पृ. 54-55]
- "युद्ध, दंगा, विस्थापन, भूमंडलीकरण, बेरोज़गारी, घर, प्रेम, बुढ़ापा, मृत्यु, बहनापा, भाईचारा, इतिहास- विषय वही हैं पर ट्रीटमेंट स्त्री-कविता में अलग है- भाषणधर्मिता का स्थान सहज संवादमयता हो जाती है, पूर्णविरामों और आदेशमूलक वाक्यों का सहज स्थानापन्न अल्पविरामों, विस्मयादिबोधक और प्रश्नबोध वाक्य! समुच्चयबोधक चिन्हों का प्रयोग भी अधिक तरल और हंसमुख-सा लगता है। कोई अलग हो तो बिना प्रकट रणनीति के भी अलग ही पहचाना जाता है।... ...स्त्री-कविता का सबसे बड़ा योगदान यही है कि उसने एक चटाई बिछाई है और पर्सनल-पॉलिटिकल, कॉस्मिक-कॉमनप्लस में माइक्रो-मैक्रो, इहलोक-परलोक, इतिहास और मिथक, शास्त्र और लोक, पौर्वात्य और पश्चिमी के बीच का पदानुक्रम तोड़कर उन्हें एक चटाई पर बिठाया है।"[5] [अनामिका, स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व (पाठ और संवाद), रेखा सेठी, पृ. 66-67]

- "स्त्री-कविता तमाम सामाजिक संरचनाओं में जो असमानता व्याप्त है, चाहे वह स्त्री को लेकर हो या दूसरे ऐसे समूहों को लेकर, उन सब के प्रति संघर्ष को जायज़ ठहराती है। वह संसार को हर तरह की कुरूपताओं से मुक्त करना चाहती है। वह पितृसत्ता की भयावहता से मनुष्य को निजात दिलाना चाहता है। इसके लिए वह सुन्दर की पहचान करना चाहती है।"[6] [सविता सिंह, स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व (पाठ और संवाद), रेखा सेठी, पृ. 85]
- "स्त्री-कविता भी बहुत गहरे अर्थों में बहुत महीन तरीके से जीवन को समग्रता में पकड़ने की कोशिश ही तो है। जो छूट गया था, जो कहने से बच गया था, वही तो कविता कह रही है।... ...स्त्री-कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि यही होगी कि वह एक ऐसा समाज रच सके जो कि 'जेंडर न्यूट्रल' हो। बेखटके हम सब अपना जीवन जी सकें, इससे बड़ा और क्या हो सकता है।"[7] [नीलेश रघुवंशी, स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व (पाठ और संवाद), रेखा सेठी, पृ. 104/113]
- "...स्त्री अपने स्वयं के अनुभव को, अपने दुख-दर्द को झेलते हुए जो लिखती हैं तो उसमें कोई शक नहीं कि यह स्त्री-कविता है।"[8] [निर्मला पुतुल, स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व (पाठ और संवाद), रेखा सेठी, पृ. 119]
- " 'स्त्री-कविता' का आशय यही है - स्त्री द्वारा स्त्री के हित में लिखी गई कविता। स्त्री-कविता में स्त्री अपने मन की भावनाओं को, अपने दुख, सुख, आशा-अपेक्षाओं को चित्रित करती है। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और जनवादी विचारधारा के बाद, अब साहित्य में मुख्य रूप से स्त्री-विमर्श और दलित विमर्श से जुड़ा लेखन किया जा रहा है। स्त्री द्वारा लिखी कविता में विषय स्त्री की मानसिकता और वैचारिकी के अनुरूप आ रहे हैं।"[9] [सुशीला टाकभौरे, स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व (पाठ और संवाद), रेखा सेठी, पृ. 135]

उपरोक्त परिभाषाओं से 'स्त्री-कविता' पदबंध संबंधी जो विशिष्टता का बोध होता है वह निश्चित रूप से कविता की अर्थवत्ता में नवीन आयामों को जोड़ता है। स्त्री-जीवन की

विडम्बना एवं प्रकृति की अनंत लीलाओं का समाहार करता स्त्री-जीवन एक नये संसार की रचना करता है। जीवन अथवा मनुष्य को खंड-खंड में देखने के बजाय सामूहिकता-समग्रता में देखना एवं 'आदि-इत्यादि' के अस्तित्व को प्रकाश में लाना स्त्री-कविता की मौलिक पहचान है। 'स्त्री की दृष्टि से स्त्रियों के जीवन' को देखने का ध्येय स्त्री-कविता पदबंध बखूबी करता है। स्त्री अनुभव व अनुभूतियों के तमाम रूपों को शब्द-रूप में स्त्री-कविता रखती है जहां तक पहुँचना पुरुष रचनाकारों के लिए असंभव नहीं, तो दुष्कर अवश्य है। स्त्री-संवेदनशीलता के महीन तंतुओं को कुछ पुरुष कवियों ने जरूर छुआ है लेकिन वहाँ भी उनकी भूमिका एक प्रेक्षक की ही रही है। इसके अतिरिक्त सामाजिक-राजनैतिक और पारिवारिक संरचनाओं पर स्त्री-कविता एक नये पाठ की पेशकश करती है। जेंडर आधारित असमानता एवं अपराध की स्थापित नीतियों पर खुलकर प्रतिरोध करना स्त्री-कविता की विशेषता है तथा जेंडर के प्रति एवं जेंडर रोल के प्रति समाज को संवेदनशील करना स्त्री-कविता का मुख्य लक्ष्य है। मानव-जीवन की सभी समस्याओं पर संवाद के जरिए सूक्ष्म ढंग से पड़ताल करती है-स्त्री-कविता। सारे वादों-विवादों से परे जीवन को सुंदर बनाने का स्वप्न दिखाती स्त्री-कविता नयी दृष्टि एवं नवोन्मेषी सामाजिक चेतना की आग्रही है। बहनापा और वैश्विक भगिनीवाद (universal sisterhood) इसका प्रधान गुण है।

आधुनिक अथवा अत्याधुनिक जीवन की चुनौतियों और सूचनाक्रांति के विस्फोट के दौर में स्त्री-पुरुष संबंधों की घटती साख, संदेह के घेरों से कवयित्रियाँ परिचित हैं। इस विध्वंस ने सबसे अधिक अहित स्त्री-समुदाय का ही किया है। स्त्री को इस सूचनाक्रांति और बाज़ार के विध्वंस में एक पण्य वस्तु की तरह ही महिमामंडित किया गया है। स्त्री-विमर्श की वैचारिक क्रांति ने जल्द ही इस नव पितृसत्तात्मक हथियारों एवं उपकरणों पर नकेल कसने का काम किया है। स्त्री-लेखन एक नये रूप में मानव जाति की समस्त चित्तवृत्तियों को सामने लाता है। वह नारी-मुक्ति के साथ-साथ मानव-मुक्ति की लड़ाई भी लड़ रही है। स्त्री-कविता इस लड़ाई में एक पक्ष

निर्मिति का कार्य कर रही है, हालाँकि इसका आंतरिक स्वर स्त्री-पुरुष संबंधों में रूढ़ हो चुके अतिवाद को साझा दायित्व के धरातल पर लाना है।

'स्त्री-कविता' पदबंध संबंधी उपर्युक्त चर्चाओं के उपरांत स्त्री-कविता के मुख्य बिन्दुओं-मुद्दों एवं उद्देश्यों को निम्नांकित रूपों में देख सकते हैं :

1. स्त्री-कविता 'स्त्री' को मनुष्य-रूप में स्थापित करने का उपक्रम है। पितृसत्ता एवं पुंसवादी मूल्यों से निर्मित स्त्री-छवि को तोड़कर स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना करना।
2. स्त्री-जीवन को स्त्री-दृष्टि से देखना, आंकना तथा मूल्यांकन करना। स्त्री-कविता के जरिए स्त्री-दृष्टि का निर्माण करना। जरूरी नहीं कि स्त्री-दृष्टि प्रत्येक स्त्री के पास हो ही अर्थात जीवन को देखने-समझने का एक नयी अनुसंधानात्मक नजरिया विकसित करना।
3. स्त्री-कविता एकल आत्मालाप के बजाय संलाप की एक विस्तृत आधारशिला को रचती है। इतिहास-राजनीति, साहित्य-संस्कृति, धर्म-परंपरा, लोक-शास्त्र आदि के साथ गाँव-शहर, स्त्री-पुरुष, अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित आदि सभी ध्रुवान्तों/अनुशासनों की उलझी गुत्थियों को अपनी प्रज्ञा से बड़ी सहजता से खोलती है, प्रश्नांकित करती है, अपना पक्ष रखती है।
4. स्त्री-कविता, स्त्री-व्यक्तित्व एवं उसकी प्रज्ञा, मन-मस्तिष्क, आचार-व्यवहार पर आरोपित पुरुषवादी दृष्टिकोणों का समन करते हुए स्त्री-संवेदना को प्रामाणिक रूप में; स्वानुभूत यथार्थ को सामने रखती है।
5. स्त्री-कविता का उद्देश्य समाज में स्त्रियों के प्रति फैले मनुवादी संस्कारों-दुराग्रहों आदि का खात्मा करना है। धार्मिक-सांस्कृतिक तथा पारम्परिक दृष्टियों को स्त्री-दृष्टि से विश्लेषित करना तथा उनमें स्त्री-संबंधी पूर्वाग्रहों को चिन्हित करना।

6. समाज को 'जेंडर सेंसेटिव' तथा 'जेंडर न्यूट्रल' की दिशा में आगे बढ़ाना भी स्त्री-कविता का मूल उद्देश्य है। लिंग-भेद, जाति-भेद तथा वर्ग-भेद आदि के पैगाम को समाज में समय-समय पर पहुंचाना।
7. स्त्री-कविता स्त्री की नितांत वैयक्तिक-निजी अनुभवों, पीड़ाओं के साथ ही समस्त भौतिक-अभौतिक संसार के अनुभवों की अभिव्यक्ति का एक सहज विराम स्थल भी है।
8. आत्मानुभूत सत्य की अभिव्यक्ति, पारदर्शिता, प्रतिरोध, बहनापा, नवाचार आदि के अतिरिक्त स्त्री-सशक्तिकरण की मूल भावना को प्रचारित-प्रसारित करना आदि स्त्री-कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं।
9. 'देह ही सर्वोपरि है' और स्त्री-देह के बाजारीकरण के खिलाफ भी स्त्री-कविता जिरह करती दिखती है। बाजारवादी उद्योग संस्कृति तथा फैशन की नयी रीति पितृसत्ता-व्यवस्था के नये हथियार हैं जिसमें स्त्री-देह का एक उत्पाद की तरह अथवा वस्तु की तरह उपयोग-उपभोग हो रहा है; स्त्री-कविता इन चिंताओं से बेफिक्र नहीं है।
10. स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, किन्नर विमर्श आदि अस्मितावादी विमर्श को स्त्री-कविता ने नयी रोशनी दी है। आधी आबादी की यह आवाज़ किसी भी विचार अथवा मुद्दे को संपूर्णता का रूप देती है।
11. हाशिये के विमर्शों एवं वैचारिक बहसों, विशेषकर आदिवासी विमर्श ने हिंदी कविता को एक नयी शब्द-सम्पदा देकर हिंदी कविता एवं हिंदी भाषा को समृद्ध किया है।
12. चूँकि स्त्रियों का भाषिक व्यवहार ही पुरुषों की तुलना में अलग संदर्भ व भाव लिए होता है इसलिए स्त्री-कविता एक नयी भाषा की निर्मिति पर बल देती है। नयी भाषा जिसमें स्त्री-द्वेष, लैंगिक-पूर्वाग्रह, भाषणधर्मिता-वाकपटुता अथवा शब्दों की कारीगरी आदि का स्थान न हो। वह संवाद और मैत्री का भाव लिए तमाम सीमाओं का अतिक्रमण-संकुचन करते हुए

वैश्विक प्रेम एवं सौहार्द को भाषा का मूल उत्स बनाए। पदानुक्रममुक्त भाव-भाषा की अधिरचना इसकी आंतरिक विशिष्टता है।

13. स्त्री-कविता नयी भाषा के निर्माण के साथ ही नये बिम्ब, प्रतीक एवं छंदों आदि का भी प्रयोग बहुतायत से करती है। मुहावरे और लोकोक्तियों के नये भाष्य भी स्त्री-कविता प्रस्तुत करती है। लोकगीतों से मिली लय और राग स्त्री-कविता के अनुभव बिंबों तथा यथार्थ को नये ढंग से परिभाषित करती है।
14. स्त्री-कविता निरंतर एक नयी स्त्री-भाषा का निर्माण भी कर रही है। स्त्री-भाषा का सौंदर्यशास्त्र पुरुषवादी भाषाशास्त्र से भिन्न, अधिक लोकतांत्रिक और संवादपरक है। यहाँ भाषा नये मनोछंद और स्पंदन को रचती है।

स्त्री-कविता की कुछ अन्य विशेषताएँ :

1. स्त्री-कविता में नागर संवेदना का बाहुल्य है।
2. स्त्री-कविता व्यक्ति को अपने समय व परिवेश के प्रति वयस्क (adult/mature) बनाती है। परिवार-समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई स्त्री-देह से जुड़े कथित गोपनीय प्रसंगों से आमजन को गंभीरता से रूबरू कराती है।
3. स्त्री-कविता और स्त्री-लेखन स्त्री के व्यक्तित्व एवं उनकी प्रज्ञा का ही अनुवाद है।
4. स्त्री-कविता में वर्णित स्त्रीवाद उसकी एक इकाई भर है। स्त्री-कविता का मुख्य अभिप्रेत/अभिदेय स्त्रीत्व का वैश्विक प्रसार है। स्त्री रचनाशीलता को गहरे अर्थ में समझना है।
5. स्त्री-कविता की अंतर्वस्तु पूर्णतः समाज सापेक्ष है। यही कारण है कि उसकी भाषा, शब्द चयन, राग और लय सामान्य व आम बोलचाल की रही है।

ii. स्त्री-कविता में स्त्री का स्वरूप :

'मनुष्य' समझने और समझाने का अहिंसात्मक वैचारिक संघर्ष स्त्री-कविता की मूल आत्मा है। स्त्रियों द्वारा रचित उपलब्ध साहित्य में स्त्री के स्वरूप को समयानुसार परिवर्तित होता देखा जा सकता है। सुमन राजे ने अपने इतिहास 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' में स्त्री-कविता को नवजागरण के विभिन्न चरण के रूप में देखा है। थेरी गाथा को उन्होंने प्रथम, संस्कृत और प्राकृत कवयित्रियों को द्वितीय तथा भक्ति-आंदोलन की कवयित्रियों को तृतीय नवजागरण की संज्ञा से अभिहित किया है। इन तीनों ही अभिव्यक्तियों का रचनाकाल अलग है। रचना का उद्देश्य भी भिन्न है लेकिन एक सूत्र जो उन्हें आपस में जोड़ता है, वह है - आत्माभिव्यक्ति की ललक। थेरी गाथा स्त्री-मुक्ति का प्रथम सोपान है। यहाँ स्त्रियों की आत्माभिव्यक्ति, अपने परिवार, समाज द्वारा किए जा रहे शोषण-अन्याय से मुक्ति की है। थेरी गाथाओं ने अपनी आत्माभिव्यक्ति में 'स्त्री' को सांसारिक बंधनों में गुलाम और अपमानित होते हुए देखा और उससे मुक्त होने के लिए चेताया भी! इस समय बुद्ध तथा बुद्धत्व द्वारा स्त्री के आत्मसम्मान को एक मज़बूत आधार मिला।

संस्कृत और प्राकृत कवयित्रियों ने रचना के लिए स्थापित समृद्ध भाषा को चुना और विषय-वस्तु के रूप में भी उन्होंने अपने जीवनानुभव के साथ सामाजिक दुराचारों का चित्रण किया। "विज्जका, सुभद्रा, फाल्गुहस्तनी, इन्दुलेखा, मारूला, विकटनितम्बा, शीला भट्टारिका"[10] आदि इस युग की मुख्य कवयित्रियाँ हैं। इन सभी कवयित्रियों का संबंध राजघराने से था। संभवतः इसलिए इन्होंने आत्माभिव्यक्ति के लिए क्लासिकल संस्कृत भाषा को चुना। इनके द्वारा लिखित कुछ ही छंद उपलब्ध हैं जिन्हें या तो किसी ग्रंथ में देखा जा सकता है या संग्रहकर्ता के यहाँ! इस युग के कवयित्रियों के छंद 'अमरशतक', 'सदुक्तिकरणामृत (संकलन काल तेरहवीं शताब्दी)', 'गाथा सप्तशती', 'सुभाषितावली', 'नीतिशतक', 'शारंगधर-पद्धति' आदि ग्रन्थों में अंश मात्रा में उपलब्ध है। इन कवयित्रियों ने तत्कालीन बादशाहों, राजाओं के

गुणगान के अतिरिक्त भक्ति-वंदना समेत कई छंद लिखे हैं। स्त्री-चित्रण में उन्होंने उनके शृंगारिक पक्ष को ही चित्रित किया है।

भक्तिकाल में भी स्त्री-कविता के जो छिट-पुट रूप मिलते हैं, उनमें भी स्त्री केंद्र में न होकर परिधि पर है। जिन कवयित्रियों का संबंध राजघराने से था (लल्लद्यद और मीरा, ताज आदि को छोड़ कर) उन्होंने कवियों की बनी बनाई परिपाटी का ही अनुसरण किया- अपने पति, पुत्र तथा राजा के बल-विद्या-धन का महिमामंडन और शत्रु पक्ष की समस्त जाति का समूल नाश। एक रणनीति के तहत स्त्रियों ने कविता में बनी-बनाई परिपाटी का चित्रण किया और बीच-बीच में अपनी दशा के स्वरूप को अभिव्यक्त करती चलीं। कुछ कवयित्रियाँ पूरी तरह क्रांतिधर्मी चेतना के साथ कविता में उतरती हैं। अक्कमहादेवी, लल्लद्यद और मीरा, ताज आदि को इसी क्रांतिधर्मी चेतना की वाहिका के रूप में देख सकते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि प्रत्येक काल अथवा समय के अंतराल में स्त्री रचनाकार सृजनरत रही हैं लेकिन यह 'स्मृत इतिहास' आज हमारे समक्ष बेहद अंश मात्र में ही उपलब्ध है। इन रचनाओं में स्त्री के स्वरूप की चर्चा उक्त समय की यथास्थिति के अनुकूल ही की गई है। स्त्री के स्वरूप में क्रांतिधर्मी चेतना के बजाय स्त्री-रचनाकार स्वयं ही उस भूमिका का निर्वाह अपनी रचनाओं में करती है अर्थात स्त्री रचनाकारों के निजी अनुभव, आत्मकथ्य ही स्त्री के स्वरूप को उनकी लेखनी में निर्मित करते हैं। 'मीरा', 'लल्लद्यद', 'ताज', 'चन्द्रसखी', रीतिकाल की 'शेख', 'दयाबाई' तथा 'सहजोबाई' आदि कवयित्रियों की कविताओं में जिस स्त्री-बिम्ब का निर्माण किया गया, वह स्वयं कवयित्रियों का आत्म प्रतिबिम्ब है जो उनकी निजता के बावजूद उस समय के स्त्री विषयक परिदृश्य से अवगत कराता है।

आधुनिक युग में ज्ञान-विज्ञान की क्रांति, प्रेस का आगमन, बहुसांस्कृतिकवाद के साथ बहुभाषी वातावरण आदि ने भारतीय स्त्री के कैनवास को एक अलग स्पेस दिया। इस नये ज्ञानोदय की क्रांति में देश की आधी आबादी ने शिक्षित होकर अपनी बुद्धिमता तथा अपनी

प्रतिभा का परिचय दिया। हिंदी साहित्येतिहास में आधुनिकता एवं नवजागरण के पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी न सिर्फ स्त्री-शिक्षा पर ज़ोर दिया, अपितु उसके विकास एवं संवर्द्धन के लिए 'बालाबोधिनी' (1873 ई.) पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया। भारतेन्दु युग की स्त्री रचनाकारों [बाघेली विष्णुप्रकाश (जन्म: संवत 1903), राजरानी देवी (जन्म: विक्रम की बीसवीं शताब्दी), गिरिजाकुंवरी (जन्म: संवत 1920), चन्द्रकला (जन्म: संवत: 1923), रानी रघुवंशी कुमारी (जन्म: संवत 1925), श्री जुगलप्रिया (जन्म: संवत 1928), सरस्वती देवी (जन्म: संवत 1932), रामप्रिया (जन्म: संवत 1940), गुजराती बाई (जन्म: संवत 1940), गोपाल देवी (जन्म: संवत 1940), कीरति कुमारी (जन्म: संवत 1952), तोरनदेवी 'लली' (जन्म: संवत 1953) आदि] आदि ने परतंत्र भारत में स्वतंत्रता-संघर्ष के अलख को आगे बढ़ाया। इस युग की कविताओं में स्त्री का स्वरूप एक सजग, सचेत और सुगृहिणी के रूप में चित्रित हुआ है। कहीं-कहीं नितांत पुरुषवादी मूल्यों के अनुरूप उन्हें 'देवी', 'पतिव्रता' आदि के रूप में भी चित्रित किया गया है, तो कहीं समाज-राष्ट्र के प्रति चिंतित होते हुए भी दिखाया गया है।

द्विवेदी युग की कवयित्रियों में सुभद्रा कुमारी चौहान (जन्म: 1905 ई.), छायावाद में महादेवी वर्मा (जन्म: 1907 ई.), रामेश्वरीदेवी मिश्र 'चकोरी' (जन्म:), पुरुषार्थवती देवी (जन्म: 1911 ई.), राजराजेश्वरी देवी 'नलिनी' (जन्म: 1911 ई.), तारादेवी पांडेय, रामेश्वरी देवी गोयल (जन्म: 1911 ई.), विष्णु कुमारी श्रीवास्तव 'मुंज' (1903 ई.), रत्न कुंवरी देवी, लीलावती झंवर 'सत्य' आदि की कविताओं में स्त्री का स्वरूप मर्यादित, परंपरावादी लेकिन सृजनधर्मी है। द्विवेदी युग से सहानुभूति के पात्र रूप में स्त्री के स्वरूप की चर्चा ने आगे चलकर छायावाद में उसे एक स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया। 'देवी-माँ-सहचरी-प्राण' का उद्बोधन स्त्री के लिए ही नहीं साहित्य और समाज के लिए भी एक नवीन दृष्टिकोण था।

प्रत्येक युग की मुख्यधारायी साहित्य-लेखन की प्रवृत्तियों को देखते-समझते तथा रचते हुए कवयित्रियों ने अपने समाज में स्त्री की स्थिति का बखान जरूर किया है। स्वतंत्रता के पश्चात

स्त्री-रचनाकारों की बड़ी संख्या साहित्य की दुनिया में दखल देती है। इनमें वे भी रचनाकार हैं जो स्वतंत्रता संघर्ष से प्रेरित होकर लिख रही थीं। महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, विद्यावती 'कोकिल', सुमित्रा कुमारी सिन्हा आदि के साथ शकुन्त माथुर, कीर्ति चौधरी, सुमन राजे आदि कवयित्रियों का नाम आता है जो साहित्य में पूरी तरह सक्रिय थीं।

स्नेहमयी चौधरी, इन्दु जैन, ज्योत्स्ना मिलन, गगन गिल, अनामिका, कात्यायनी, सविता सिंह, रजनी तिलक, नीलेश रघुवंशी, अनीता वर्मा, सुशीला टाकभौरे और निर्मला पुतुल आदि कवयित्रियां अस्सी-नब्बे के दशक में स्त्री के एक नये तेवर के साथ साहित्य जगत में पैठ बनाती हैं। यह समय मौलिकता-बौद्धिकता के साथ ही जड़ता और पुंसवादी मूल्यों के संरक्षित होने का भी युग था। जड़तावादी वर्ग अपना वर्चस्व कायम रखना चाहता था, इसलिए वह प्रत्येक नवोन्मेषी वृत्ति, वैज्ञानिक चेतना तथा सामाजिक समता के हर प्रयास को सामाजिक खतरे के रूप में शिनाख़्त करता था। लेकिन समाज में बढ़ती आधुनिक शिक्षा, सोच व सचेतनता ने लोगों को विकासोन्मुखी पथ पर अग्रसर किया। समाज में स्त्रियों की दीन-हीन दशा में सुधार के प्रयास ने गति पकड़ी। महिलाओं ने शिक्षित होकर विभिन्न नौकरियों एवं उच्च पदों पर कार्य करती हुई स्त्री-सशक्तिकरण की नींव को आधार प्रदान किया। शिक्षा ने जागृति फैलाने का काम किया। तकनीक और इंटरनेट ने दुनिया के समस्त ज्ञान को मनुष्य की हथेली पर ला रख दिया। इस सूचना तकनीकी क्रांति ने भारत ही नहीं, पूरे विश्व के समाज को प्रभावित किया। वैश्विक स्तर पर ऐतिहासिक-सामाजिक तथा अस्मितामूलक क्रांति ने समाज के पीड़ित, दमित, शोषित तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को अपनी हिस्सेदारी, अपने हक़-हकूक के प्रति नये स्वर से जागृत किया। इस जागरण में स्त्रियों ने पुरुषों का बराबरी से साथ दिया लेकिन बदले में पुरुषों ने उन्हें पुनः कोठरी में धकेलने का काम किया। इस बार सामंतों का स्थान नयी पूंजीवादी नीतियों ने ले लिया। कुछ ढील देने के साथ इसने बाजार के सबसे बड़े हथियार के रूप में स्त्रियों का

उपयोग करना शुरू किया। 'स्त्री-देह' इसका एक माध्यम बना। लेकिन इसके दूरगामी परिणाम निकले जो थोड़े-बहुत स्त्री के पक्ष में रहें।

हिंदी साहित्येतिहास की परंपरा में अस्सी-नब्बे का दशक स्त्री-कविता के उद्भव व विकास के नज़रिए से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह एक प्रस्थान बिन्दु (Departure point) है जहाँ से स्त्री-कविता एक नया मोड़ लेती है। स्त्री-कविता में बनते या निर्मित स्त्री-बिम्ब को एक नयी दिशा मिलती है। यहाँ पारंपरिक-सांस्कृतिक तथा धार्मिक खोल में पल रही स्त्री-छवि को एक धक्का स्त्री-रचनाकारों से मिलता है। एक स्त्री का लिखना क्यों मायने रखता है? इसका एक सामान्य उत्तर स्त्री-लेखन से पूर्व साहित्य में जो स्त्री-छवि चित्रित किए गये हैं, उनकी अर्थ-छवियों में देखे जा सकते हैं, वे मात्र एक प्रगल्भा, भोग्या या देवी आदि के ही रूप रहे हैं। पुरुष-दृष्टि से निर्मित स्त्री बिम्ब। पुरुष-दृष्टि से निर्मित स्त्री बिम्ब स्त्री व्यक्तित्व के एकरेखीय स्वरूप को स्थापित करता है। स्त्री-लेखन ने स्त्री के असल रूप को निखारा और समाज के समक्ष रखा है। समकालीन कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में उन सभी स्थितियों एवं रूपों को चित्रित किया जिनसे स्त्रियाँ पल-पल दोचार होती हैं। शुभा, कात्यायनी, अनामिका, सविता सिंह आदि कवयित्रियां जहाँ अपने समकाल के प्रति सचेत होकर, अपनी कविताओं में स्त्री के स्त्रीत्व, संघर्ष और गुलाम मानसिकता के प्रति गहरी चोट करती हैं तो दूसरी ओर अनीता वर्मा, नीलेश रघुवंशी, रंजना जायसवाल, रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे तथा निर्मला पुतुल सरीखी कवयित्रियाँ हैं जो भारतीय हाशियाकृत स्त्री के स्वर को बुलंद करती दिखती हैं। इन कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में स्त्री के निम्नांकित स्वरूपों को चित्रित किया है : रोती हुई औरत का चित्र, बलात्कृत स्त्री का स्वरूप, शास्त्रों से परे नयी स्त्री का स्वरूप, प्रतिरोधरत और संघर्षरत स्त्री, अहिंसक स्त्री, कथित तौर पर बेवकूफ़ स्त्री, रिश्ते-नातों के मध्य बँधी स्त्री, मैदान में खेलती प्रफुल्लित स्त्री, उन्मुक्त व बौद्धिक स्त्री, आत्मनिर्भर स्त्री, विस्थापित स्त्री, ऐतिहासिक चरित्र में लिपटी स्त्री, सामाजिक रूप से पीड़ित स्त्री, न्याय माँगती स्त्री, पितृसत्ता को चुनौती देती स्त्री,

बाजारवाद के गिरफ़्त में फंसी स्त्री, छल से मुक्त होती स्त्री, पहली बार घर से निकली स्त्री, दलित स्त्री, उपेक्षित स्त्री, घर से बाहर निकली स्त्री, हिंसा की शिकार स्त्री, आदिवासी स्त्री के मिथक को तोड़ती स्त्री, अपनी ज़मीन तलाशती बेचैन स्त्री, पुरुषवाद या मर्दवादी विचारों से निरंतर लड़ती स्त्री, स्त्री-देह की अपवित्रता से संघर्षरत स्त्री, स्त्री के भीतर की स्त्री का स्वरूपांकन, शोक से संतप्त स्त्री...आदि-आदि।

कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय समाज में स्त्री के व्यक्तित्व को 'रोना-धोना' के पर्याय के रूप में प्रचलित किया जाता रहा है। समाज के बदलते स्वरूप और विचारधारा ने स्त्री-समाज को विगत पाँच-छह दशकों से एक नये राह का अन्वेषी बनाया है। अलग-अलग दृष्टिकोणों को जाँचते-परखते हुए स्त्री-समाज जिनमें लेखिका, समाज सेविका, राजनेत्री, डॉक्टर, इंजीनियर तथा घरेलू स्त्री आदि शामिल हैं, उन्होंने अपने परिवेश में प्रतिकूलता के बावजूद अपने वजूद को शनैः शनैः मज़बूत किया है। हिंदी कविता में सीधे-सीधे इन भावों-विचारों तथा संकल्पनाओं को लाने का श्रेय स्त्री-कविता को ही जाता है क्योंकि इससे पूर्व 'स्त्री' कविता में सुंदरता, संवेदना, दुख-सुख तथा जन्मदात्री की एकपक्षीय परघोषित भूमिका में ही रही है। इस लिहाज से हिंदी के समकालीन दौर में स्त्री रचनाकारों द्वारा किया गया हस्तक्षेप महत्त्वपूर्ण है। 'शुभा' एक कवयित्री होने के साथ ही एक सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। उनके पास समाज के स्त्री-वर्ग से संबंधित घिनौनी घटनाओं का अनुभव है जो हमारे समाज में आज भी स्त्रियों के प्रति हिंसात्मक वृत्ति को दर्शाता है और जिसके संबंध में साहित्य भी मौन रहा है। उन्होंने ऐसी घटनाओं से पीड़ित तथा संघर्षरत स्त्री के रूप को कविता में दर्शाया है : "बलात्कारी न भी भाग चुका हो तो भी / कैमरा फ़िक्स है रोती हुई औरत पर।"[11]

कवयित्री अनामिका ने भी अपनी कविताओं में स्त्रियों के उस संसार को जीवन दिया है जो भारतीय अथवा ग्रामीण-बोध से पूरित होकर भी अपनी चेतना और अपने अस्तित्व के प्रति सचेत है। 'एक औरत का पहला राजकीय प्रवास' की औरत कोई कल्पना लोक की अप्सरा

नहीं अपितु इसी परिवेश की व्यवहारिक स्त्री है, उनकी उलझन व उनकी चिंता विशुद्ध भारतीय स्त्री की चिंता व चुनौती है। यही नहीं 'आम्रपाली', 'मौसियां', 'टूटी-बिखरी और पिटी हुई', 'वृद्धाएं धरती का नमक है', 'बस-टिकट', 'गालियाँ सुन लेने का शील', 'भिन्न' आदि कविताओं में स्त्रियों के जो रूप बिखरे पड़े हैं वे स्त्रियों को उनकी यौनिकता अथवा यौन शुचिता के मकड़जाल से भिन्न धरातल पर ला खड़ा करते हैं :

"...कि इसी एक जुबां से उसने / तीन-तीन लोगों से कैसे यह कहा - / "सबसे ज्यादा तुम हो प्यारे !" यह तो सरासर है धोखा - / सबसे ज्यादा माने सबसे ज्यादा ! / लेकिन खुदा ने कलम रख दी, / और कहा – " औरत है, उसने गलत नहीं कहा।"[12]

अथवा,

"किस्से कहूँ और कैसे कहूँ - / मैं एक कोने में पड़ी हुई / गुड़िया होने से थक जाती हूँ !"[13]

उपरोक्त काव्य पंक्तियों में उल्लेखित स्त्री हमारे परिवेश, हमारे घर-परिवार की व्यवहारिक स्त्री है जिसे कवयित्री ने अपनी प्रज्ञा से कविता में स्वर दिया है। जड़ता, गुलामी तथा यथास्थितिवाद के स्थान पर गतिशीलता, उन्मुक्तता और स्वतंत्रता आदि राष्ट्र द्वारा दिए जाने वाले मूलभूत अधिकार हैं और उन्हीं मूल्यों की चाह प्रत्येक सचेत स्त्री को होती है। न्याय की गुहार लगाती स्त्री के स्वरूप को यहाँ साफ देखा जा सकता है। कवयित्री ने सामाजिक रूप से पीड़ित-शोषित स्त्री के अनुभवों, एक सामान्य स्त्री के अनुभवों का उल्लेख कर समाज के अर्धचित्र को पूरा किया है। इसकी ऊर्जा वे अपने ऐतिहासिक स्त्री पात्रों एवं स्त्री-समाज के आदिरूपों से लेती हैं। ऐतिहासिक चरित्रों के स्मरण से इन सामान्य स्त्रियों का जीवन स्पंदित होता दिखता है : "था आम्रपाली का घर / मेरी ननिहाल के उत्तर ! / आज भी हर पूनो की रात / खाली कटोरा लिए हाथ / गुज़रती है वैशाली के खंडहरों से बौद्ध भिक्षुणी आम्रपाली।"[14]

यह बौद्ध भिक्षुणी ऊर्जा स्रोत हैं और आधी आबादी के संघर्ष का जीवंत इतिहास भी। यह भी गौरतलब है कि कवयित्री स्त्री के मिथकीय चरित्र की तुलना में ऐतिहासिक चरित्र को

चुनती है, उनसे सीख लेती है, अपना स्वरूप विस्तार करती है। 'आम्रपाली' राजसत्ता और पुरुषसत्ता को बुद्धत्व द्वारा मात देकर अपने स्त्रीत्व को एक नया आयाम देती है। आज भी पुरुषवाद और पूंजीवाद के बरक्स स्त्रियों का हथियार अहिंसा, शांति और करुणा ही है। ऐतिहासिक चरित्रों के स्मरण का विशेष महत्त्व है। यह न सिर्फ एक इतिहास की यात्रा है बल्कि इसी बहाने इतिहास में स्त्री के इतिहास की तलाश भी है। कवयित्री अनामिका इतिहास में गोता लगाकर उसमें खोती नहीं बल्कि अपने वर्तमान को साधे रहती हैं। वर्तमान के कोण से खड़े होकर ही कवयित्री इतिहास का अवलोकन करती है। वर्तमान की दहलीज़ पर खड़े होकर अपने अतीत की स्मृतियों को देखना तथा खोई हुई थाती की थाह को कविता में तराशना अनामिका की कविता की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। लोक संस्कृति तथा लोकाचार द्वारा प्रदत्त स्त्री समाज की नितांत वैयक्तिक रिश्तों की जमा पूँजी- मौसीपन, बुआपन, दीदीगीरी तथा अम्मागिरी आदि के खालीपन को महसूस करना कवयित्री की विशेष क्षमता का ही परिचायक है। घर-परिवार में इन किरदारों की क्या भूमिका है, कहने की आवश्यकता नहीं! इनका टूटना-बिखरना एक जीता-जागता लोक-इतिहास का मिट जाना है। किसी भी समाज का यह विराट जीवन-अनुभव किसी धरोहर अथवा विरासत से कम नहीं। इन्हें संजोना-संवारना हमारा दायित्व है : "पचपन के आसपास के अकेलेपन के / काले-कत्थई उन चकत्तों का मौसियों के वैद्यक में / एक ही इलाज़ - / हँसी और कालीपूजा और मुहल्ले की अम्मागिरी।"[15]

परिवार-समाज में स्त्री का यह अलग रूप है जिस पर प्रायः बातें कम होती है। लोक ज्ञानदात्री स्वरूपा ये 'स्त्रियाँ' अलग अंदाज़ में घर-परिवार व राष्ट्र में अपना योगदान देती हैं। बच्चे-बड़े तो इनसे सीखते ही हैं, घर की स्त्रियाँ तो इनकी उत्तराधिकारी होती हैं। स्त्री रचनाकार विशेषतः कवयित्रियों ने जब कलम उठाई तो सविनय अवज्ञा के तर्ज़ पर ही उनका लेखन चला है। उनका शत्रु पक्ष कोई गोला-बारूद या विश्वासघाती देश नहीं है, बल्कि वह सामंती, पितृसत्तात्मक, धर्म-तंत्र मुखी सोच रहा है जिसमें वे स्वयं पलकर बड़ी हुई हैं और कमोबेश उसी

माहौल में अपने और अपने बच्चे को जीवन देती हैं। इसका अर्थ हुआ कि यह लड़ाई अपनों की, अपनों से है और उस सत्ता से भी जो पुंसवादी मूल्यों को संरक्षण देती है। समाज में 'स्त्री' व्यक्तित्व को पहेली बनाकर उसका इस्तेमाल करना, उसके व्यक्तित्व को तिरोहित करने जैसा ही रहा है।

स्त्री को परिवार-समाज की वस्तु, संपत्ति आदि मानने का चलन उसे दोयम दर्जे का साबित करने के लिए काफी है। इस आधार पर स्त्रियों के साथ यौन हिंसा, पारिवारिक-सामाजिक हिंसा, भाषिक हिंसा ; चाहे वह शाब्दिक हो या शारीरिक आमबात मानी जाती रही है। विश्व के अधिकांश प्रदेशों में शारीरिक हिंसा के आकड़ों में लगातार बढ़ोतरी हैरत में डालने वाली है। रिश्ते-नातों के रूप में पुरुष की क्रूर छवि एक दहशत भरा वातावरण अपनी ही स्त्रियों के लिए बनाए रखती है। मर्दवाद के दंभ में स्त्रियों के प्रति हिंसा पुरुष को अपराधी नहीं, अपितु असली मर्द की भावना से स्फुरित करती है। कवयित्री अनामिका की 'टूटी-बिखरी और पिटी हुई' कविता में जिस हिंसा का बिम्ब है उससे मुक्ति या उसके खिलाफ प्रतिहिंसा का उद्घोष आसान नहीं है। वे कुदरत के वे रंग हैं जो हर बार उस ज़ख्म और मन की पीड़ा को हरा कर जाते हैं। यह हिंसा समाज प्रदत्त है। कविता पीड़ा के भाव पर, अपमान पर तथा पाशविक परिवेश पर ऐसा रंग चढ़ाती है जो पाठक को झंकृत करता है। वह हिंसात्मक बिम्ब अवचेतन पर अमिट रूप में रह जाता है : "पीठ नीली, / चेहरा पीला, / लाल आँखें और / ज़ख्म हरे- / कुदरत के सब रंगों की बोतल / उलट-पलट जाती है मुझ पर / उनके आते ही!"[16]

स्त्रियों के प्रति पारिवारिक-सामाजिक तथा राजनैतिक हिंसा पुरुषवाद का कुत्सित रूप है। इस रूप को मज़बूत करने का काम करती हैं हमारी धार्मिक-जातीय और सामाजिक रूढ़ियाँ। ऐसा नहीं है कि इसके खिलाफ आवाज़ नहीं उठती, उठती है और इसके पीछे मुकम्मल प्रतिरोध की एक पूरी कथा है; पर उस कथा को, उस वैचारिक भावना को समाज के लिए विघटनकारी तत्व प्रचारित कर दफ़न कर दिया जाता है।

न्याय माँगती स्त्री की छवि समाज को प्रायः स्वीकार नहीं होती! इतिहास की सारी विदुषियाँ, नायिकाएँ, गणिकाएं व सामान्य स्त्रियाँ न्याय की माँग करें तो एक पल में इतिहास बेपर्द और बदसूरत हो जाएगा। वैसे भी इतिहास ने बहुत पहले से ही स्त्रियों को हाशिए पर रखा है। पुरुष चरित्र जिस महानता, विद्वता एवं वीरता की सीढ़ी चढ़कर समृद्धि की ऊंचाइयों को छूता है, उसकी नींव एक स्त्री के त्याग और बलिदान से ही निर्मित होती है। सीता के राम हों या यशोधरा के बुद्ध या रत्नावली के तुलसी – सबकी एक 'विनय पत्रिका' बाँची जानी अभी बाकी है : "एक 'विनय पत्रिका' मेरी भी तो है, / लिखी गई थी वो समानांतर / लेकिन बाँची नहीं गई अब तलक !"[17]

अनामिका के ये अनुभव साहित्य-संस्कृति तथा हमारे परिवेश में स्त्री के प्रति नज़रिये को बदलने की माँग करते हैं। न्याय माँगती स्त्री का यह रूप आगे की कड़ी में समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचे में सेंध लगाना शुरू करता है। पितृसत्तात्मक समाज व संस्कार में सेंध लगाने हेतु कवयित्री ने ऐसी भाषा का चुनाव किया है जो सीधे उनके गले उतरती नज़र आती है। पुंसवादी रवैये और व्यवहार के समक्ष स्त्री-कविता एक अलाव है जो निरंतर अपने प्रतिरोध की ज्वाला को बनाए रखती है। साहित्य, इतिहास तथा नीति-नियंताओं में स्थान न मिलना ऐतिहासिक विवेकहीनता का परिचायक है। इस विवेकहीनता के बोध ने एक ऐसे अविवेक को जन्म दिया जिसके अनुसार स्त्रियाँ केवल घर-बिस्तर और प्रजनन का ही काम कर सकती हैं ; बौद्धिकता, वैज्ञानिकता तथा सृजनात्मकता उनके वश की बात नहीं! इस दुर्बोधता को अनामिका जैसी कवयित्री ने बख़ूबी समझा है। वह उस पूरे पैटर्न को समझते हुए उस पुरुषवादी चंगुल से निकलने के लिए उद्घोष करती हैं : "हे परमपिताओं, / परमपुरुषों- / बख़्शो, बख़्शो, अब हमें बख़्शो!।"[18]

यह समस्त स्त्री-जाति का स्त्री-मुक्ति के लिए सामाजिक-राजनैतिक अविवेक के खिलाफ और उस पूरी सामाजिक-वैचारिक संरचना से अलगाव का उद्घोष है।

समकालीन स्त्री कवियों ने समाज में अरसों से रूढ़-प्रचलित स्त्री-छवियों को आड़े हाथों लिया है। बल-बुद्धि और विचार की कसौटी पर समाज में पुरुषवादी विचारधारा ने स्त्रियों को हाशिये पर रखा। यह प्रचारित किया गया कि स्त्रियाँ मंदबुद्धि होती हैं, पुरुष की प्रज्ञा द्वारा ही स्त्री संचालित होती है। अपने प्रखर वैचारिक संबद्धता और प्रगतिशील मूल्यों की संवाहिका के रूप में चर्चित कवयित्री कात्यायनी; इन स्त्री-केन्द्रित प्रक्षिप्त दुर्विचार को बौद्धिक धरातल पर विमर्श का रूप देती हैं। कात्यायनी अपनी कविताओं में कथित तौर पर 'बेवकूफ़ औरत', पौरुषिक रिश्ते-नातों के जंजाल में उलझी स्त्री तथा इन सबसे इतर खेलती-कूदती उन्मुक्त स्त्री के चित्र को कविता में आकार देती हैं। पुरुषवाद के दंभी स्वरूप को सबसे अधिक किसी कवयित्री ने झकझोरा है तो वह कात्यायनी का ही चिंतन रहा है। वह इस पूरे समय को 'पौरुषपूर्ण समय' की संज्ञा से अभिहित करती हैं। पुरुषवाद की स्त्री संबंधी क्रूरता के साथ जो पारंपरिक रवायतें हैं उनपर कवयित्री का चिंतन मुखर होता दिखता है। 'नहीं हो सकता तेरा भला' कविता में इस पुरुषवादी खोखले दंभ को सहज ही देखा जा सकता है : "बेवकूफ ज़ाहिल औरत ! / कैसे कोई करेगा तेरा भला? / ... मुझे ऐसी औरत क्यों नहीं दी / जिसका कुछ तो भला किया जा सकता। / यह औरत तो बस भात राँध सकती है / और बच्चे जन सकती है / इसे भला कैसे मुक्त किया जा सकता है?"[19]

यह उस कुंठित और दंभी पुरुषवाद का चेहरा है जिसे हमारे समाज में सम्मानजनक स्थान (पति-परमेश्वर-पालनकर्ता-ईश्वर सदृश्य) दिया जाता है। औरत का काम, काम नहीं बल्कि बेगैरत काम है! हैरत इस बात की है कि कथित तौर पर 'बेवकूफ और बेगैरत' द्वारा की गई पैदाइश और परवरिश ही पुरुष-दंभ को इस लायक बनाती है कि वह पुनः स्त्री को समझने के बजाए उसे कठघरे में डाल देता है। यह समाज की वह स्त्री है जो मूक रहकर शोषण को, हिंसा को गहने की तरह हर बार पहनती है, सुनती है, सहती है पर पुरुष का पत्थर दिल कभी नहीं पसीजता और अंततः वह मूक रहकर ही एक दिन मर जाती है। एक बड़ा वर्ग स्त्री के संदर्भ में

कुछ इसी तरह की सोच रखता है और उसे प्रसारित भी करता है। कवयित्री ने समाज के वे जीते-जागते चरित्र लिए हैं जो पूर्णतः भारतीय समाज की छायाप्रति लगते हैं।

कात्यायनी ने स्त्री-बिम्ब उकेरने के समानांतर उसके बधियाकरण की पूरी राजनीति के खेल को समझते हुए अपने वैचारिक निबंधों में उसका पर्दाफ़ाश किया है। 'प्रेम, परंपरा और विद्रोह', 'दुर्ग द्वार पर दस्तक', 'कुछ जीवन्त कुछ ज्वलंत' आदि पुस्तकों में संकलित लेख अपने समय के बरक्स स्त्री के पूरे आधार व अवस्थिति को समझने की कुंजी है। कवयित्री ने इन लेखों में सामाजिक-वैचारिक आदर्श मुखी संस्थाओं की कार्य प्रणाली का स्त्रीत्व के नज़रिये से पोल-खोल किया है। कवयित्री, स्त्री-वैचारिकी, बौद्धिकता तथा चेतनशीलता की एक प्रखर वक्ता होने के कारण स्वयं में ही एक उदाहरण है। कवयित्री बेहद सचेत भाव से अपने समाज-राष्ट्र में स्त्री की अवस्थिति को बारीकी से देखती-समझती और उन्हें कविताओं में अभिव्यक्त करती है। 'सात भाइयों के बीच चम्पा' कविता की चम्पा निम्नमध्य वर्ग के परिवेश की उपज है।

सविता सिंह एक सशक्त भाव-विचार की कवयित्री हैं। इन्होंने समाज-राष्ट्र में स्त्री की छवि को बहुत नजदीक से देखा, समझा और भोगा है। स्त्री के प्रति मुक्तिकामी चेतना का रुख़ इनकी कविताओं में हमेशा मौजूद रहता है। सविता सिंह की अधिकांश कविताओं के केन्द्र बिन्दु स्त्री एवं स्त्रीत्व रहे हैं। ऐसे में यह देखना-समझना आसान हो जाता है कि उनकी पक्षधरता क्या है! कवयित्री ने औरत की सामाजिक-पारिवारिक अस्मिता को धीरे-धीरे परत-दर-परत खोलने का काम किया है। वह उसे कभी दर्शन के रूप में उसके परपोषित स्वरूप पर लिखती हैं तो कभी उसके आत्महंता स्वरूप पर! 'मैं किसकी औरत हूँ', 'दूर तक चली आ रही परंपरा में / उल्लास नहीं मेरे लिए' कविता में स्पष्ट उद्घोष करने वाली कवयित्री के मनोविज्ञान में स्त्री व्यक्तित्व का एक खास बोध है। यहाँ स्त्री के व्यक्तित्व की एक स्वतंत्र और मजबूत छवि अनुस्यूत है। यह स्त्री व्यक्तित्व का वह रूप है जो उन्मुक्त है, स्वतंत्र है पर बौद्धिकता से लैस है। साथ ही

आत्मनिर्भरता के कारण अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी है। यह स्त्री समाज में, राष्ट्र में अपनी जातीय अस्मिता के लिए निरंतर संघर्ष करती है और समाज में आशा तथा परिवर्तन की एक लौ के रूप में अधिष्ठित होती है।

कवयित्री के अब तक तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'अपने जैसा जीवन', 'नींद थी और रात थी' और 'स्वप्न समय'। तीनों ही काव्य संग्रहों की कविताओं में स्त्री के प्रति जो नज़रिया कवयित्री ने अपनाया है, वह विविधवर्णी है। सविता जी अपनी कविताओं में आज़ाद ख़याल औरत अर्थात अपने समाज-सत्ता द्वारा प्रदत्त-प्रक्षेपित प्रपत्तियों से उन्मुक्त होती स्त्री का अंकन करती हैं। आत्मनिर्भर हो रही स्त्री के संबल को चित्रित करती हैं, पितृसत्तात्मक विचार से लोहा लेने वाली बौद्धिक स्त्री को प्रमोट करती हैं और इन सबके बीच विस्थापित हो रही स्त्री के दर्द को भी कविता में अभिव्यक्त करती हैं। कवयित्री के लिए उन्मुक्तता, आज़ादी का अर्थ व्यापकता से है। वह समाज में, परिवार में स्त्री को पूर्णतः आत्मविश्वास से लैस देखना चाहती हैं। इसलिए वे स्त्री के अंतस की पुकार बनती है : "उन्मुक्त हूँ देखो, / और यह आसमान / समुद्र यह और उसकी लहरें / हवा यह / और इसमें बसी प्रकृति की गंध सब मेरी हैं / और मैं हूँ अपने पूर्वजों के शाप और अभिलाषाओं से दूर / पूर्णतया अपनी।"[20] यह स्वत्व का बोध ही स्त्री के आत्मविश्वास का वह रूप है जो प्रकारान्तर से स्त्री समाज को ठोस वैचारिक रूप दे रहा है। कवयित्री ने औरत पर पुरुषों की जागीरदारी सोच को चुनौती देने का काम किया है। पुरुष समाज ने एक अरसे से स्त्री के विवेक का दलन कर उसे कोठरी में रखने का काम किया है। आत्मसंघर्ष और आत्ममंथन द्वारा सविता की कविता उस रीति को पहचानती है और उसे बदलने का प्रयत्न करती है। ओढ़ा हुआ या ख़ैरात में मिला पुरुषोचित सम्मान एवं धन-संपदा से उन्हें लोभ नहीं है। तमाम सुख-सुविधाओं तथा समृद्धि के बीच भी स्त्री की नियति उस गुलाम-सी हो जाती है जिसका जन्म ही किसी की हवस को मिटाने के लिए, किसी के लिए बच्चा पैदा करने और किसी की गालियाँ सुनने के लिए हुआ होता है! स्त्री चाहे जिस वर्ग, जाति या समुदाय

की हो वह महज एक अघोषित परित्यक्ता बन कर ही रहती है : "बहुत सुबह जग जाती हैं मेरे शहर की औरतें / वे जगी रहती हैं / नींद में ही वे करती हैं प्यार घृणा और संभोग / निरंतर रहती हैं बँधी नींद के पारदर्शी अस्तित्व से / बदन में उनके फुर्ती होती है / मस्तिष्क में शिथिलता।"[21] यह मानसिक शिथिलता कथित सुसभ्य वर्ग की, आधुनिक जीवन शैली की आरामदेह संस्कृति से प्रसूत है। यह स्त्री के आभ्यंतर स्वरूप को निरंतर कुपोषित कर रही होती है।

समाज में स्त्री के प्रति काम वासना की लिप्सा को सविता सिंह अनुभूत करते हुए अपनी कविता में पिरोती हैं। उच्छृंखल पुरुष स्त्री को सिर्फ वासना से विक्षिप्त होकर देखता है। स्त्री का खुलेआम घूमना, स्वतंत्र होकर आगे बढ़ना उसे पसंद नहीं है इसलिए वह उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। इस संदर्भ को लिए सविता की कई कविताएं हैं। 'कुसुम का सत्याग्रह' कविता में कुसुम को संताप-आत्मसंताप तथा भूख की स्थिति में भी पुरुष के काम-वासना का प्रकोप ही झेलना पड़ता है- "संताप के इन कठिन दिनों में / बताती है कुसुम / उसे कभी नहीं मिला भर-पेट भोजन / अक्सर बचा-खुचा ही मिला / देखा संभ्रांत पुरुषों ने उसकी तरफ़ / कामवश ही अक्सर / किया उसे मजबूर बेबस।"[22] प्रेम और सम्मान के स्थान पर दहशत, घृणा और बेबसी देना पुरुषसत्तात्मक समाज की संस्कृति रही है। कवयित्री ने इस मूक सामाजिक-पारिवारिक हिंसा को रचनात्मक रूप से कविता में ढाला है। एक स्त्री द्वारा एक स्त्री का यह आंकलन स्त्री-कविता को उत्तरजीवी बनाता है। कविता की यह नयी दुनिया है जिसमें स्त्रियाँ स्वयं को सिरजती हुई नयी चेतना का प्रसार कर रही हैं।

स्त्री-कविता की फ़ेहरिस्त में कवयित्री अनीता वर्मा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अब तक उनके दो काव्य संग्रह (रोशनी के रास्ते पर, एक जन्म में सब) प्रकाशित हुए हैं। अपनी कविताओं के नये उत्साह और उम्मीद से हिंदी कविता में पैठ बनाने वाली अनीता वर्मा इस महाशोर-गुल के बीच बहुसांस्कृतिकवाद व भूमंडलीकरण के भँवर में निःवस्त्र हो रही स्त्री के हाशियाकरण को बख़ूबी पहचानती है। वह बाजारवाद के दुष्परिणामों की ओर इशारा करते हुए स्त्री के

वस्तुकरण होने पर चिंता ज़ाहिर करती हैं : "अब बाज़ार स्त्री के कदमों में है / उसके केश सहलाता उतारता कपड़े / सामान कोई भी हो बेच जाती है स्त्री / वह बाज़ार को ले आती है घर में।"[23] कहने की आवश्यकता नहीं कि वैश्वीकरण का भारतीय संस्करण ने; बाज़ार को सजाने और अधिक लाभ हेतु स्त्री का 'इस्तेमाल' सबसे ज्यादा किया है। ब्यूटी इंडस्ट्री और ब्यूटी कल्चर को बढ़ावा देकर भारतीय समाज के मध्यवर्ग तथा निम्नमध्यवर्गीय परिवारों को उपभोक्ता में तब्दील कर दिया गया है।

भूमंडलीकरण और विश्वबाजार के चंगुल में भारतीय कंपनी के साथ भारतीय सरकार ने भी उनके साथ उदारवादी रवैया अपनाकर उन्हें अपने देश में पनाह दी। 'विश्व सुंदरी' तथा 'मिस इंडिया' जैसे ख़िताब उस व्यापार को जन-जन तक अनिवार्यता के रूप में पहुँचाना था। कवयित्री, स्त्री के खिलाफ़ हो रही इस भयानक साज़िश को पहचान रही थी। उस उद्योग-संस्कृति ने स्त्री के बड़े समुदाय को घर से निकलने के लिए मजबूर किया - रोजगार के लिए, उस फ़ैशन का हिस्सा बनने के लिए तथा अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए। धीरे-धीरे यह उद्योग संस्कृति अपनी शर्तों पर समाज की माँग का हवाला देकर पूरे स्त्री समुदाय को सौंदर्य के तयशुदा मानकों पर कसने लगी तथा उससे मनचाहा प्रयोग करवाने लगी। इसने घर से निकली स्त्री को पुनः सार्वजनिक चौका-बर्तन वाले रसोईघर के कार्यों में सन्नद्ध कर दिया। स्त्री शरीर को मनोरंजन तथा उपभोग का प्रमेय बना दिया गया। टीवी-विज्ञापन जगत इससे दिन-दोगुनी, रात-चौगुनी उछाल पर लाभ कमाने लगा और उद्योग संस्कृति का यह फॉर्मूला हिट साबित हुआ। पितृसत्ता के मानकों के अनुकूल इस रीत ने पुरुषसत्तात्मक समाज को पुनर्गठित करने का काम किया। कवयित्री इस उछृंखल कूटनीति को पहचानते हुए लिखती भी हैं – "खरीदनी है अगर दवा तो देखो स्त्री को / दर्द से ज्यादा असरदार है उसकी कमर / तेल से ज्यादा सुंदर हैं केश कपड़ों से ज्यादा देह।"[24]

बाजारवादी कूटनीति की शिकार हुई सुसभ्य सुशिक्षित स्त्री समुदाय पर कवयित्री ने बेबाक टिप्पणी की है। घर से निकली स्त्री आज बाज़ार की उत्पाद होकर बड़ी आसानी से शोषण

की शिकार होती देखी जाती है। बाज़ार ने स्त्री-देह को उत्पाद तथा विज्ञापन का पर्याय बना दिया। 'विज्ञापन', 'इस्तेमाल', 'बाज़ार', 'बहस', 'ईर्ष्या' आदि कविताएं बड़े प्रभावी ढंग से टेलीविज़न जगत में हो रहे स्त्री-देह के साथ हो रहे खिलवाड़ को प्रस्तुत करती है। कवयित्री ने अपने समाज में पल-पल घट रही तथा अनुभूत सामान्य सत्य को कविता में उद्घाटित कर उसे विशेषीकृत रूप दिया है तथा उनसे भविष्य में होने वाले खतरों से वह समाज को सचेत करती दिखती हैं। कवयित्री अपने अंतर्जगत और बहिर्जगत के परिवेश की सान्द्रता को कविता में ऐसे बिंबों के साथ रखती है जैसे वे अभी-अभी आँखों में तैर रहे हों अथवा निरंतर गतिमान हो! शब्दों का चुनाव भी उसी सान्द्रता के अनुकूल उक्त परिवेश में सहज ढंग से गुंफित मिलता है। अतिकथन नहीं कि अनीता वर्मा की कविताएं विपरीत युग्मों के दौर में गहरे आशावाद को प्रतिस्थापित करती हैं। उनकी बेबाकी और संवेदनाओं की सघनता से पाठक दो पल के लिए उस परिस्थिति का बोध अवश्य करता है। 'विज्ञापन' में तब्दील हो रही स्त्री और इंसानियत के मर्म को देखने की अचूक दृष्टि कवयित्री को खास बनाती है : "वह जो चाय के बारे में बता रही है नई-नई बहू / उसने भी आजमाए हैं उम्र कम करने के नुस्खे / एक क्रांति बस अभी-अभी होनी है धोबियों के बाज़ार में।"[25]

टीवी विज्ञापन-जगत ने स्त्री के इस रूप को सहजता से स्वीकार किया है जो भविष्य में समाज को दिग्भ्रमित करने के लिए काफी है। 'स्त्री-देह' को प्रयोगशाला में परिवर्तित करने की यह पहली सीढ़ी है जिससे बचने और बचाने की जरूरत है। कवयित्री की इसी तरह की 'बूढ़ानाथ की औरतें', 'माँ का हाथ', 'स्त्री का चेहरा', 'आश्वस्त', 'नीम का पेड़', 'दोष' आदि कविताएं स्त्री के विभिन्न स्वरूपों का चित्र उकेरती दिखती है। यहाँ स्त्रियों का आत्मबिम्ब पाठक से सीधे संवाद करती हुई अपनी दशा की ओर ध्यान आकर्षित कराता है। कविता का यह भाव, दृश्य, विचार तथा प्रतीक शुद्ध रूप से निष्कलुष और निष्कंप है। कवयित्री निरंतर ज़हरीले हो रहे

परिवेश और लोकमानस के सम्मुख एक स्थिर लौ लिए निकल पड़ी है यह जानते हुए कि इसका कोई असर नहीं होगा, पर वह जड़ता के खिलाफ़ एक गतिशील उम्मीद तो अवश्य बनेगी।

नीलेश रघुवंशी स्त्री-काव्य जगत की ठोस आवाज़ हैं। इनकी कविताएं सहज, सरल शब्दों में उन भावों को गुम्फित करती हैं जिससे स्त्रियाँ घर-परिवार से लेकर बाहरी कार्य-कलापों में बँधी रहती हैं। उनकी कविताओं में भारतीय समाज के कामगार परिवार का दर्द रचनात्मक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। कवयित्री कविता नहीं रचती, बल्कि समाज में रहने वाले अबूझ कंठ को स्वर देती चलती है ; सहज, सरल और धवल रूप में। उनकी कविताओं में स्त्री की स्थिति वैयक्तिक होने से ज्यादा सामूहिक रूप में सामने आती है, अपने पूरे परिजन-पुरजन के साथ। 'हंडा', 'बिना टिकट यात्रा करती लड़की', 'संतान साते', 'पिता की पीठ', 'घर से निकलना', 'बच्चा संभालने वाली लड़की', 'स्त्री-विमर्श', 'फ़ेशियल', 'सुंदरियों' आदि कविताओं में जो स्त्री उभरकर आती है वह लोक चेतना और सांसारिक अनुभवों से लबरेज़ है। कवयित्री इन्हें किसी एजेंडा के तहत नहीं सृजित करती हैं। वह अनायास ही कवि मन का उद्रेक है। दहेज के साथ लाई 'हंडा' स्त्री की जीवन धुन के सदृश्य है। वह हंडा जिजीविषा की प्रेरणा है। 'बिना टिकट यात्रा करती-लड़की' की लड़की शाश्वत, मूल्यबोध से स्वतःस्फूर्त है : "बिना टिकट यात्रा करती लड़की / पेड़ पहाड़ और आसमान भी तो / हैं उसी तरह बिना टिकट / बिना टिकट ही यात्रा करती हैं चिड़ियाँ सारे आसमान में।"[26] यह है कवयित्री का स्वप्निल सफर जो हक़ीक़त के बेहद करीब है।

कवयित्री स्त्री-केन्द्रित बौद्धिक बहसों की तुलना में ज़मीन पर काम करने में विश्वास रखती हैं। इसका कारण यह है कि ये बौद्धिक बहस एक समय के बाद क्लास स्ट्रग्ल को भूलकर एक अलग क्लास बन जाती है जिसका सामान्य जन-जीवन से कोई साबका नहीं रह जाता है। इससे कवयित्री स्वयं को भी दूर रखना चाहती है। 'स्त्री-विमर्श' जैसे वैचारिक मसले भी जब भटकाव की दिशा में हो तो कवयित्री उसकी सीमाओं पर भी जरूर बोलती है, व्यंग्य करती है।

कवयित्री साहित्य अथवा कविता में स्त्री के उन सभी रूपों को लाना चाहती है जो उनके इर्द-गिर्द बनती-बिगड़ती है। छल की शिकार हो रही स्त्री हो या पहली बार घर से निकली स्त्री या कामगार स्त्री अथवा तथाकथित उच्चवर्ग की साधन सम्पन्न स्त्री लेकिन अपने ही परिवेश से शोषित हो रही स्त्री आदि सभी का एक साधारण कार्य-व्यापार कविता का वर्ण्य-विषय बनता है। 'फेशियल' और 'सुंदरियों' जैसी कविता में कवयित्री उस सत्ता का प्रतिरोध खड़ा करना चाहती है जो स्त्री को मोहक और दर्शनीय बनाना चाहते हैं।

कविता मनुष्य के भीतरी व बाहरी सन्नाटे तथा अकथ कथा को कहती हुई हृदय स्थल तक पहुँचती है। नीलेश जब अपने आपसी रिश्ते के अकथ भाव को कविता के रूपक में बाँधती हैं तो वह समस्त हिंदी कविता में अलग खड़ी नज़र आती हैं। पिता, भाई, बहन, माँ और बुआ आदि के गझिन आपसी रिश्तों ने परिवार को एक सुदृढ़ रूप दिया है। संपत्ति से विलग होते ही पारिवारिक सदस्यों से उपेक्षा भाव और स्त्री होने का दुख 'बुआ का दुख' बनता है। बीमारी की स्थिति में भी जान-प्राण से लगकर घर को सुंदर बनाने की जिद में 'मलेरिया में बहन' अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहती है। बेटी के धन का अस्वीकार तथा बेटी को पराया धन मानने की सामाजिक रीति जिससे एक स्त्री का अन्तर्मन टूट जाता है और दुनिया को 'तोड़-मरोड़कर' ऐसा बनाना चाहती है जहाँ बेटी पराया धन न होकर, एक जीता-जागता इंसान महसूस हो। नीलेश की कलम से निकली यह स्त्री का रूप हमारे समाज को आगे बढ़ाने की आशा जगाता है। इन छोटे-छोटे दृश्य-रूपों से कवयित्री स्वयं भी सचेत रहती है। उन्माद और अपराध भरे माहौल के षड्यंत्र को समझते हुए कवयित्री की ममता बिलख उठती है : "सद्भाव शांति-यात्रा निकल रही है / मुश्किल से सौ-पचास लोग भी नहीं इस यात्रा में / अपने दो बरस के बेटे का हाथ पकड़, होती हूँ शामिल, शांति-यात्रा में / पकड़ाती हूँ नन्हें हाथ में, तख़्ती शांति-अपील की / करती हूँ प्रार्थना... / कभी शामिल न हो मेरा बेटा, उन्मादी भीड़ में।"[27]

‘पहली रुलाई तक की डायरी’ की इक्कीस कविताएं समस्त हिंदी कविता का विराम स्थल हैं। यहाँ स्त्री के आत्मन का ऐसा स्वरूप है जो मनुष्य के जन्म लेने की, गर्भ में आकार ग्रहण करने की तथा नौ महीने की दुखमय सुख की कहानी का प्रमाणिक रसयुक्त संवाद है। इन इक्कीस कविताओं की चुहलबाजी और आत्मिक संवाद स्त्री के सृजनधर्मी जीवन-बोध को प्रदर्शित करता है। कवयित्री का आत्मकथ्य स्वर कविता की शैली को सुग्राह्य एवं प्रभावशाली बनाता है। इसी के साथ वह उन कूटनीतिक पुरुषवादी विचारों पर भी दो टूक कहती हैं जिसने उस पीड़ा को पीड़ा से अलगाकर उत्सवलीला अथवा ‘सृष्टि का सबसे सुखद कार्य’ साबित और प्रचारित किया है। इस सुखद कार्य के अनंतर यह जानना भी उतना ही आवश्यक है कि इस ‘सुखद कार्य’ के पूर्व एवं पश्चात जो मानसिक-शारीरिक कष्ट स्त्री सहती है, उसका बोध भी होना समाज के लिए जरूरी है। स्त्री के जन्मदात्री माँ के साथ अजन्मे शिशु का संवाद आधुनिक हिंदी कविता की बड़ी उपलब्धि है।

रंजना जायसवाल घोषित स्त्रीवादी चिंतक और एक्टिविस्ट कवयित्री हैं। उनकी कविताओं का टोन विध्वंशकारी शक्तियों को सीधे कचोटता है। परंपरा, संस्कृति, नैतिकता तथा आदर्श आदि पुरुष सत्तात्मक पदबंध की राजनीति को समझते हुए स्त्री के वस्तुकरण के खिलाफ अपनी आवाज़ को इंक़लाबी तेवर देती हैं। इनकी ढेरों कविताएं ‘पौरुषपूर्ण समय’ को अपनी शाब्दिक ध्वनियों से तोड़ती हैं। स्त्री-देह की अपवित्रता के प्रचारित नीतियों के खिलाफ़ रंजना का कवि मन सहस्त्रबार उस कुटिल मानसिकता पर सवाल खड़ा करता है। स्त्री के लिए ‘बेहतर जगह’ की तलाश, अपनी आज़ादी तथा आत्मसम्मान के लिए तत्पर स्त्री के साथ स्त्री के खिलाफ़ स्त्री की तैयारी के समानांतर प्रेम करती स्त्री के निश्छल गीत उनकी कविताओं को नया अर्थ देते हैं। साहित्य तथा समाज में पुरुषवादी मठाधीशी के खिलाफ भी रंजना का काव्य मानस बेहिचक अपना प्रतिपक्ष रखता है। इनकी कविताओं में स्त्री का प्रेममय स्वरूप है तो स्त्री के लिए परंपरा से प्रदत्त गालियों के अनुशीलन की क्षमता की कला भी है। ‘जब मैं पुरुष हूँ’ कविता में

पुरुषवाद के मठाधीशीपन पर कवयित्री ने सीधे चोट किया है। पुरुषवादी आर्तनाद में एक स्त्री की 'बेहतर जगह' की चाहत पूरी होती नहीं दिखती : "स्त्री / जिन्दगी भर ढूँढती है / सिर छुपाने की जगह / और अंत तक नहीं मिलती / अपनी हथेलियों से / बेहतर जगह उसे।"[28] तथाकथित देवीतुल्य समाज में स्त्री का अपनी निजता के लिए जगह न मिलना समाज में स्त्री-पुरुष के असंतुलन को दर्शाता है।

रंजना जायसवाल की लघु काव्य-यात्रा में स्त्री उत्कर्ष के ऐसे सोपान हैं जो स्त्री-कविता की पहचान को मजबूत बनाते हैं। उन्होंने एक सिरे से रूढ़िवादी प्रवृत्तियों के साथ बाजारवादी षड्यंत्र, भूख और स्त्री के हिस्से के प्रेम को कविता का रूप दिया है। सपने देखती स्त्री की उड़ान में कवयित्री विश्वास, दृढ़ता और संकल्प का रंग भरना चाहती है। कवयित्री स्वयं भी उस चाहत का, उड़ान का हिस्सा बनना चाहती है: "सीखना चाहती हूँ / पक्षियों की भाषा / उड़ना चाहती हूँ / उनके साथ / सुदूर आकाश में / छू लेना चाहती हूँ / क्षितिज का छोर।"[29] कवयित्री की यह चाहत उन सभी स्त्रियों की चाहत है जो एक सपने को लेकर सदैव अपने कदम को आगे बढ़ाती रहती हैं। पक्षियों की भाषा, उनकी उमंग, उनकी स्फूर्ति तथा पक्षियों का सामूहिक भाव आदि को लेकर कवयित्री उन अनछुए सपने तक पहुँचना चाहती है ; जहाँ संसार का अंतिम छोर है। अर्थात संसार संबंधी समस्त ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा। लेकिन कवयित्री यह भी जानती है कि यह अकेले नहीं लड़ी जा सकती 'आज़ादी की लड़ाई', इसलिए वह अपने समाज, इतिहास, साहित्य, संस्कृति और पुरुष के आचार-विचार पर कठोरता से व्यंग्य कसती है। समाज में कवयित्री एक ऐसी स्त्री का निर्माण करना चाहती है जो 'एक भ्रूण की आत्मकथा' के खिलाफ़ आवाज़ उठाए, जो स्त्री को नयी परिभाषा से परिभाषित करें! वह उन सभी पुंसवादी अर्थों से पर्दा उठाए जिसने स्वयं स्त्री की आत्मा को, शरीर को अपवित्रता का पाठ पढ़ा कर उसे यौनिकता में बाँधे रखा है।

'टरटल्स फ़्लाई फिल्म और एक स्त्री का प्रश्न' कविता में प्रश्न करती स्त्री-देह की अपवित्रता पर ऐसे मौलिक प्रश्नों को खड़ा करती हैं जो हमारी चेतना को स्पंदित करती है। एक बलात्कृत स्त्री-देह को समाज अपवित्रता के समुद्र में धकेल देता है लेकिन उसी के अपराधी पुरुष शरीर को, लिंगधारी बलात्कारी शरीर की पवित्रता-अपवित्रता पर समाज की चुप्पी, कवयित्री के मन में चीत्कार का रूप लेती दिखती है। क्या स्त्री-देह की अपवित्रता के बाद वाकई जीने की चाहत खत्म हो जाती है या समाज उसे ऐसा दमघोटू माहौल देता है जिसमें वह जीना तो दूर मरना भी मुमकिन नहीं कर पाती। जिन्दगी से बड़ा देह? यह सवाल उठता है : "स्त्री क्यों नहीं जीना चाहती / देह के अपवित्र किए जाने के बाद / क्या बड़ी होती है जिन्दगी से देह?"[30] प्रश्न स्वाभाविक है, देह बड़ी या जिन्दगी? अथवा स्त्री मानती ही क्यों है खुद को सिर्फ देह? कवयित्री अपने समय के ही नहीं बल्कि स्त्री-जाति के जीवन के ऐतिहासिक प्रश्न को उठाती है।

रंजना जायसवाल की कविताओं का एक बड़ा भाग जहाँ वह पुरुषवादी ताकतों से जिरह करती दिखती हैं, स्त्री को समाज में नये रूप में परिभाषित करती दिखती हैं ; वहीं दूसरी ओर कवयित्री के भीतर स्वच्छंद प्रेम करती स्त्री का स्वरूप भी दृष्टिगत होता है। लगभग सभी संग्रहों में कवयित्री की ऐसी प्रेम कविताएं हैं जिनमें प्रेम सात्विक रूप में मौजूद है। प्रेम का स्त्री -रूप। छोटी-छोटी भावधारा में लिखी गई प्रेम विषयक कविता उनके आत्मकथ्य सदृश्य लगती है। प्रेम की विराटता, निश्छलता तथा मौलिकता का पावन संयोजन कवयित्री ने किया है। 'प्रेम मेघ', 'मुट्ठी में', 'छूअन', 'बच्चों की तरह', 'तुम्हारे नाम की', 'स्मृति ने', 'तुम्हारे बिना', 'चाँद', 'जिन्दगी के कागज़ पर', 'किसने', 'प्रेम की जाति', 'देह', 'पहली बार', 'प्रेम', 'बेइत्मीनानी में भी' आदि कविताओं में प्रेम का एक अलग भाष्य उभरकर आया है। प्रेम का रूमानी और रूहानी दोनों ही रूप यहाँ मौजूद है। शरीरी-अशरीरी दोनों का संयोग उसे प्रभावी और निश्छल रूप देता है। रंजना की कविता की स्त्री युवा मन-मस्तिष्क की स्त्री है जो प्रेम और

विध्वंश दोनों की ताकत को साथ लेकर चलती है। वह स्त्री के सवालों का बेबाकी से उत्तर देने वाली वह नयी स्त्री है जिसके लिए राष्ट्र की भौगोलिक सीमाएँ भी छोटी पड़ जाती हैं।

स्त्री-कविता का दलित स्वर स्त्री-कविता को विस्तृत रूप देने के साथ ही साहित्य जगत में ऐसे अनुभवों को आकार देता है जिनसे समस्त हिंदी साहित्य अछूता रहा है। रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे आदि दलित कवयित्रियों ने इस स्वर को अपने दौर में मजबूत बनाया है। घोर उपेक्षा और घृणा का भाव मिलने पर भी स्वस्थ संवाद की आकांक्षा स्त्री-कविता के दलित स्वर की सबसे बड़ी ताकत है। स्त्री और स्त्री के मध्य वर्गभेद, जातिभेद तथा लिंगभेद को समाप्त करना ही उक्त स्वर का प्रयोजन है। "मैं आजाद इंसा की तरह / सम्पूर्ण जीवन चाहती हूँ... आज़ाद पंछी की तरह / जीवन में फैलाव / प्यार में प्रतिबद्धता / रिश्ते में ऊष्मा चाहती हूँ।"[31] ये पंक्तियाँ दलित स्वर का मुख पत्र हैं। रजनी तिलक की यह स्त्री 'आजाद इंसा की तरह सम्पूर्ण जीवन' की चाहत लिए अपने समय से संवाद करती है। दोहरा शोषण, अत्याचार और अपमान, पीड़ा, जाति का दंश लिए घूम रही, न्याय के लिए बिलख रही स्त्रीत्व को रजनी तिलक पूरी वैज्ञानिकता, बौद्धिकता तथा तार्किकता से स्वर देती हैं। दलित समाज उसमें भी दलित स्त्री होना 'दोहरा अभिशाप' के समान है। तथाकथित प्रबुद्ध समाज इन्हें 'भंगिन', 'चमारिन' आदि नामों से न सिर्फ अपमानित करता है, बल्कि उनसे अपना निकृष्ट काम भी करवाता है। रजनी तिलक दलित स्त्री के इन दंशों की क्रूरता को, दोहरा चरित्र को अपनी कविता में सीधी-सरल भाषा में प्रस्तुत करते हुए उस विचार, उस वातावरण से सतर्क होने के लिए कहती हैं। 'ऐ लड़की', 'हवा सी बेचैन युवतियाँ', 'बलात्कार', 'मेरे भाई', 'वजूद', 'एकल माँ', 'अनकही कहानियाँ', 'भंगिन', 'औरत', 'न जाने कब से', 'अर्धांगिनी नहीं पूरा शरीर हूँ', 'योनि है क्या औरत' आदि कविताओं में स्त्री के प्रति जो कवयित्री का स्टैंड है, वह बेहद स्पष्ट है। वह इतने गजालतों के बावजूद समाज के सम्मुख मैत्री का प्रस्ताव रखती हैं। स्त्री-सशक्तिकरण के लिए एक-दूसरे के साथ का आह्वान करती हैं। वर्ग, जाति, जेंडर के भाव से ऊपर उठकर मानवता, बंधुता की बात

करना चाहती हैं। सामूहिकता, एकजुटता से ही समाज में पितृसत्तात्मक सामंती ढाँचे को तोड़ा जा सकता है।

स्त्री-कविता का दलित स्वर एक साथ दो स्तरों पर पितृसत्तात्मक वर्चस्व से लड़ रहा है- एक वह सामान्य कथित तौर पर उच्च समाज जिसमें दलित स्त्रियाँ जातिसूचक अलंकरणों से अपमानित होती हैं, शोषित-पीड़ित होती हैं, दूसरा उन्हीं के परिवार-समाज का पुरुषवाद जो अपनी पुंसवादी करतूतों से अपने घर की स्त्रियों को गुलाम बनाए रखना चाहता है। यह कुकृत्य दलित समाज के बौद्धिक वर्ग (दलित साहित्यकार, चिंतक आदि) में भी देखे जाते हैं। कवयित्री सीधे-सीधे उन 'आदिपुरुषों' को आड़े हाथों लेती है : "कथित दलित साहित्यकारों / तुम्हारी ओच्छी नज़र में / स्त्री का सुंदर होना है / उसका 'मैरिट' / सुंदर न होना 'डीमैरिट'! / सवर्णों की नज़र में / वे ही हैं मैरिट वाले / तुम हो डीमैरिट ! / मैरिट का पहाड़ा उनका जैसा / वैसा ही तुम्हारा, फिर / तुम्हारा विचार नया क्या?"[32] कवयित्री की यह फटकार निश्चित रूप से जातिदंश के भीतर पनपे दूसरे जातिदंश की गाँठें खोलती है।

कवयित्री जातीय, दैहिक हिंसा की शिकार स्त्री के चित्र को भी संवेदनात्मक रूप से उकेरती है। वह हार, अपमान, घृणा आदि के बावजूद अपने वजूद के लिए अंतिम साँस तक लड़ना चाहती है। 'जीरो हूँ' कविता की स्त्री समाज द्वारा प्रक्षेपित जीरोपन को आत्मसात कर स्वयं आगे बढ़ना चाहती है। वह जानती है इस जीरो को स्त्री अपने आत्मविश्वास से असंख्य में बदल सकती है, अपना निश्चित प्रभावी स्थान तय कर सकती है। इसी तरह वह 'हवा सी बेचैन युवतियाँ' की उन्मुक्तता पर चिंतित भी होती है। बदलते समय ने जो अवसर दिए उसमें स्वयं को सिद्ध कर पाने का एहसास उसे और आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। इसलिए कवयित्री 'ऐ लड़की', 'बलात्कार', वजूद है', 'तुम्हारी आस्थाओं ने' आदि कविताओं में सफलता की ओर बढ़े कदमों को चौकन्ना करना चाहती है। कवयित्री भलीभाँति जानती है कि इस वर्ग की

सफलता भी जातिवादी, पुंसवादी वर्ग के लिए करारी हार है और इसे नेस्तनाबूद करने के लिए पुंसवादी वर्ग हिंसा का सहारा कभी भी ले सकता है।

पितृसत्तात्मक तथा पुंसवादी मूल्यों से संचालित स्त्रियों को भी कवयित्री ने दो टूक जवाब दिया है। स्त्री द्वारा स्त्री के शोषण को वह ढीठ, कुरूप तथा नग्न राजनीति के तौर पर देखती है। वह 'फर्क' कविता में दोनों ही वर्ण (सवर्ण और निम्न वर्ण) में शोषित हो रही नीति को दिखाती है। दोनों ही वर्ण के स्त्री-समुदाय के संघर्ष और पीड़ा का जो फासला है, वह अगम्य है। इसी के आगे स्त्री को केन्द्र में रख कर हो रही राजनीति के षड्यंत्रकारी की भी कवयित्री ने खबर ली है- 'क्या कहूँ' कविता में। 'अनकही कहानियाँ' दलित समाज की स्त्रियों की गाथा होने के साथ ही समाज की संस्थागत आस्था की-विद्रुपता को सामने लाती है- "भंगिन ढोती है सर पर मैला / खीचती है कूड़े की ट्राली / चमारिने करती है बेगारी खेतों में, / शहरों में माँजती है बर्तन / ढोती है सिर पर ईंट / समझी जाती है संपत्ति मालिक की / कहीं भी, कभी भी / उनका बलात्कार करना / अपराध नहीं धर्मशास्त्र में।"[33] यह समाज का वीभत्स चेहरा है, जिसे दलित समाज की स्त्री झेलने के लिए विवश है।

स्त्री-कविता का तीसरा सोपान है - हिंदी स्त्री-कविता में आदिवासी जगत की उपस्थिति। आदिवासी विमर्श एवं आदिवासी साहित्य दोनों ही हिंदी साहित्येतिहास में नये विमर्श हैं। आदिवासी जगत को कविता में साकार करने का काम जिन कलमशिल्पियों ने अपने हाथों में लिया है, उन्होंने सच्चे अर्थों में हिंदी कविता को समृद्ध किया है ; उनमें निर्मला पुतुल, युवा कवयित्री जसिन्ता केरकेट्टा, ग्रेस कुजूर, रोज केरकेट्टा तथा सरिता सिंह बड़ाइक आदि के नाम लिए जाते हैं। स्त्री-शोषण, हत्या, बलात्कार का घिनौना सामाजिक-राजनैतिक दस्तावेज़ यहाँ अंकित है। अनुभव एवं आँखों देखी-भुक्तभोगी घटनाओं के ऐसे बिम्ब जो मनुष्यता के दर्द-ए-इंतहा को भी साँसे न लेने दें। अपनी मूल भाषा संताली के साथ हिंदी में लिखने वाली निर्मला पुतुल के अनुभव ही कविता का रूप लेते हैं। आदिवासी जल-जंगल-जमीन की लड़ाई,

पुलिसिया दमन, सरकारी तंत्र का अत्याचार आदि के साथ ही भू-माफियाओं, राजनेताओं तथा स्थानीय बाहुबली लठैतों से पल-पल दहशत को झेल रही आदिवासी स्त्री की यंत्रणा शर्मनाक है। 'किसी से कहा नहीं हमने' कविता में हर दिन बलात्कृत स्त्री का दंश किसी भी सामान्य मनुष्य को गहरे आर्तनाद में धकेल सकता है : "तुम्हारी दरिन्दगी के किस्से / जो दागे हैं कई बार / अधजले सिगरेट / मेरी जांघों पर / नशे में धुत / कई बार किए हैं जानवराना बलात्कार / कुरेदा है नाखून से वक्षस्थल / अपने बत्तीसों दाँत / चुभोए हैं गालों पर / जिसने पहनाए नहीं वस्त्र कभी / निर्वस्त्र किया वही बार-बार / बेआबरू हुए हम अरमानों की बस्तियों में / थप्पड़ जड़ा तुमने कई बार / स्वीकार नहीं करने से तुम्हारी बात / मेरे ही बिस्तर पर करते रहे रोज़ / कइयों का बलात्कार।"[34] यह दर्द-ए-इंतहा हिंदी कविता की दुनिया में दस्तक देते ऐसे आत्मकथ्य हैं जो पितृसत्तात्मक समाज की पाशविकता को खुलकर सामने रखते हैं। बलात्कृत स्त्री का यह दंश समाज की घोर अमानवीयता को दर्शाता है।

निर्मला पुतुल अपनी अधिकांश कविताओं में आदिवासी समाज की बहू-बेटियों को शिक्षा, रोजगार तथा आधुनिकता के नाम पर छल करने वाले लोगों से सावधान करती हैं। वह उस राजनीति से अपने समाज को जागरूक करना चाहती हैं, जिसने आदिवासियों के घर में घुसकर उनकी बहू-बेटियों की आबरू को लूटा, उनकी ज़मीनों को हथिया कर उसे बेघर कर दिया। 'आदिवासी स्त्रियाँ', 'बहामुनी', 'बिटिया मुर्मू के लिए', 'आदिवासी लड़कियों के बारे में', 'कुछ मत कहो सजोनी किस्कू' आदि कविताओं में आदिवासी समाज की वे स्त्रियाँ हैं जिन्होंने सभ्य समाज की विद्रूपता को करीब से महसूस किया है। 'कुछ मत कहो सजोनी किस्कू!' कविता का काव्य-बिम्ब उस भयावह वातावरण को निर्मित करता है जिनसे रूह काँप उठे। जातिवादी, पुरुषवादी समाज में स्त्रियों की यह दशा अमानवीयता की पराकाष्ठा को भी पार कर जाती है। 'जातीय टोटम' के बहाने खूनी खेल भी स्वयं उसी समाज के पुरुष अपनी महिलाओं के साथ करते हैं। जानवराना बलात्कार, नाक-कान काट कर घर से निकाल देना,

‘पकलू मराण्डी’ की तरह भरी पंचायत में खुलेआम नंगा कर नचवाना आदि आम बात है। इससे आदिवासी स्त्री-समाज की वीभत्स पीड़ा का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

इन विपरीत, असहनीय परिस्थितियों के बीच भी कवयित्री जिजीविषा और सौन्दर्य के स्वप्न की आस नहीं छोड़ती। अंततोगत्वा आदिवासी स्त्री-कविता ‘अपनी ज़मीन तलाशती बेचैन स्त्री’ के महास्वप्न के पथ पर अग्रसर है। वह खून को पानी, विध्वंश को विकास और हत्या, बलात्कार आदि खूनी खेल को नादानी कहने से साफ़ इंकार करती है। ‘अपने घर की तलाश में’ निकली आदिवासी स्त्री उन चुनौतियों से लड़ने को, उसे मात देने के लिए तैयार है। वह सपने देखती है ; अपने घर के, अपने ज़मीन के और अपने स्त्री होने के अर्थ के : “धरती के इस छोर से उस छोर तक / मुट्ठी भर सवाल लिए मैं / दौड़ती-हाँफती-भागती / तलाश रही हूँ सदियों से निरन्तर / अपनी जमीन, अपना घर / अपने होने का अर्थ!!”[35] कवयित्री की कर्मठ जीवन-शैली, शुद्ध ईमानदारी तथा जमीनी अस्मिता का प्रेम अभूतपूर्व है। ‘चुड़का सोरेन से’ और ‘ढेपचा बाबू’ कविता आदिवासी क्षेत्रों से प्रत्येक वर्ष महिला तस्करी और समाज में अकेली स्त्री-उत्पीड़न की कथा कहती है। झूठे वादे-प्रलोभन, शिक्षा तथा रोजगार की आकांक्षा में सैकड़ों स्त्रियों को कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई तथा नेपाल आदि शहरों में ले जाकर देह व्यापार, नौकरानी तथा सस्ते मजदूरों में तब्दील किया जाता है। भोले-भाले आदिवासियों पर दिकू लोगों का अत्याचार और भी हतप्रभ करने वाला होता है।

‘पहाड़ी स्त्री’, ‘माँ के लिए’, ‘ससुराल जाने से पहले’, ‘उतनी दूर मत ब्याहना बाबा’, ‘पिलचू बूढ़ी से’, ‘मेरे बिना मेरा घर’, ‘सुगिया’ आदि कविताएं आदिवासी स्त्री-संवेदना की वे परतें हैं जिनसे वह जीने का गुर सीखते हैं। अपने परिवार, समाज के भोलेपन को कवयित्री ने अलग रंग दिया है। राष्ट्र, राज्य और राष्ट्र-भक्ति की भोथरी बहस से अलग यह एक ऐसी दुनिया है जो अब भी घोर अमानुषिक अत्याचार के बावजूद खुशहाली की उम्मीद थामे हुए है। अपनी मिट्टी, अपनी जमीनी संस्कृति और प्रेम की अविरल धारा को बचाए रखने के लिए अपने प्राणों

को भी न्योछावर करने के लिए तत्पर इस समाज की स्त्रियाँ पूरी दुनिया को स्त्रीत्व का नया पाठ सीखा रही हैं। बिरसा मुंडा की क्रांतिधर्मिता के साथ ये स्त्रियाँ अपनी काया में अब पहले से अधिक उज्ज्वल, पहले से अधिक मजबूत और पहले से अधिक शिक्षित होने के रास्ते पर अग्रसर हैं। अब इन्हें गुमराह करना, इन्हें धोखे में रख इन पर शासन करना तथा इनकी आबरू के साथ खेलना आसान नहीं है।

गगन गिल की कविताओं में स्त्री के भीतर की स्त्री का रूप, शोक संतप्त स्त्री और स्त्री के मनोविज्ञान के मनोविश्लेषणात्मक स्वरूप की छवियों को साफ देखा जा सकता है। स्त्री-देह की दार्शनिक अर्थवत्ता कवयित्री अपनी कविताओं में व्याख्यायित करने का प्रयत्न करती दिखती हैं। पुत्री की शोक में लिखी गई कविताएं कवयित्री के दुखांतक वात्सल्य भाव को प्रदर्शित करती हैं। स्त्री के दुख, पीड़ा एवं अवसाद को करुणा का स्थाई रूप देने में कवयित्री सिद्धहस्त है। बुद्ध एवं बुद्धत्व के प्रति राग उनकी कविताओं की केन्द्रीय विशेषता है। अब तक उनके पाँच काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं : 1. एक दिन लौटेगी लड़की (1989), 2. अँधेरे में बुद्ध (1996), 3. यह आकांक्षा समय नहीं (1998), 4. थपक-थपक दिल थपक-थपक (2003), 5. मैं जब तक आयी बाहर (2018) । गगन गिल अपने समाज में 'लड़की' के उस रूप को भी देखती हैं जो स्त्री अपने सपनों के साथ जीती है, उसे पूरा करने के लिए उद्यम करती है। कवयित्री भय, आशंका से मुक्त अपने वातावरण को खुशनुमा बनाती है : "लड़की अभी उदास नहीं है / उदास होगी बहुत दिनों बाद / अभी वह देख रही काँच पर ढल गई / कोहरे की बूँद को / साँसों में ठहर गई हवा के बारे में / उसे कुछ नहीं मालूम / किसी भी चीज़ से वह भयभीत नहीं / उदास होने लायक कुछ भी तो नहीं"[36] उदास होने से पहले या भयभीत होने से पहले लड़की अपने जीवन की आपाधापी को स्वप्न के साथ-साथ यथार्थ जगत में भी पूरा करना चाहती है।

गगन गिल स्त्री के भाग्यवादी तथा शोकमयी स्त्री के अवसाद को मार्मिक रूप में व्यक्त करती हैं। 'चौबीस पार करती लड़की', 'एक इच्छा चूड़ियों की', 'शहर में उसके दुख बसता

है', 'कनु की स्मृति', 'अवान्तर', 'अवसाद', 'यदि तुम उसे', 'दिन के दुख अलग थे', 'इस विरह का रंग उजला है', 'वही दाना देना, प्रभु', 'देवी-स्तुति' आदि अनेकों कविताएं हैं। इन कविताओं में भाग्यवादी, शोकमयी औरत का गहरा दुख, संताप, विरह-विक्षोभ तथा निःसहायता झलकती है। औरत, लड़की तथा बच्ची की उम्र के विभिन्न पड़ावों में होने वाले मानसिक असंतुलन को कवयित्री ने कविता का रूप दिया है। यह घरेलू स्त्री का दुख-दर्द हो ऐसा नहीं है, ये दुख स्त्री-जाति के जीवन में कभी न कभी आता ही है। 'कनु की स्मृति' का हृदय विदारक शोक कवयित्री की निजता के बावजूद मातृत्व-शोक की गूंज को सुना जा सकता है। यह पारम्परिक स्त्री का रूप है। निश्चित रूप से दुख की सघनता के बावजूद कवयित्री का पूर्णतः दुखात्मक रूप निराशा उत्पन्न नहीं करता है। दुख को समझना जीवन की महत्ता को समझना है। दुख, पीड़ा जीवन का स्थाई भाव है बावजूद इसके जीवन के स्पंदन को, सौंदर्यबोध को और जिजीविषा को छोड़ा नहीं जा सकता है। कवयित्री का बुद्धत्व के प्रति प्रेम एक आस जरूर जगाता है।

गगन गिल की करुणा प्रधान कविताओं के मध्य एक बड़ा भाग ऐसा भी है जहाँ कवयित्री का स्वर विद्रोही, परिवर्तनकामी चेतना से संपृक्त है। दुख के चमकते खोटे सिक्के को घिसने पर जीवन के रुपहले रूप का भी दर्शन कवयित्री करती है जो उनके आभ्यंतर को रोशनी से मथ देता है। 'मैं जब तक आयी बाहर' उनका अद्यतन काव्य संग्रह है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएं जीवन की नयी रोशनी और उम्मीद की कविताएं हैं। 'मैं जब तक आयी बाहर', 'कभी-कभी अपना सच', 'लौटना पड़ता है', 'देवता नहीं, कोई मनुष्य', 'देवता हो, चाहे मनुष्य', 'ज़रा धीरे चलो, वनकन्या', 'तुम सुई में से निकलती हो', 'अंडे से निकलू बाहर', 'एक दिन मैं तुमसे मिलूँगी' आदि कविताएं करुणाकलित हृदय के अगले पड़ाव की कविताएं हैं। इन कविताओं में स्त्री का स्वर प्रकृति स्वभाव के करीब है। यहाँ स्त्रीत्व जेंडरलेस होकर मनुष्यत्व को स्पर्श करता है। कवयित्री ने बुद्ध के दुखवाद का भरपूर सहारा लिया है। स्त्री-जीवन के दुख

हो या समस्त मानव जीवन के परिष्कार का मूल आद्य बुद्धत्व में संभव है। टैगोर और बुद्ध की चेतना से रोशनी लेकर गगन गिल साहित्य-सर्जना को अलग से रेखांकित व परिभाषित करती हैं। स्त्री के संदर्भ में दुख, पीड़ा, कष्ट, मानसिक उद्वेलन को बार-बार उस पराकाष्ठा पर ले जाना चाहती है जहाँ वह स्थितप्रज्ञ-सी प्रतीत हो। जीवन मोनोलॉग के बजाय अर्थवान प्रतीत हो।

पुत्री शोक और मृत्यु का बोध कवयित्री के निजी दुख की कविता होते हुए भी निजेतर भाव को प्रकट करती है। बुद्ध केन्द्रित कविताएं भी सोद्देश्यता से लिखी गई कविताएं हैं। स्त्री-जीवन के साथ मनुष्य जीवन के निगूढ़ अर्थों को कवयित्री बुद्ध के आर्य वचनों के आलोक में समझना चाहती है। 'अँधेरे में बुद्ध' संग्रह की बुद्ध केन्द्रित कविता हो या उनके अन्य संग्रहों की बुद्ध केन्द्रित कविता सभी स्थानों पर बुद्ध भिक्षु, चीवर तथा संसार के रहस्य को जानने की लालसा निहित है। बुद्ध वाङ्गमय की गूंज से बुनी कविताएं 'अँधेरे में बुद्ध', 'घूम रहे हैं उद्विग्न बुद्ध', 'एक भिक्षु के एकांत में', 'तुम नहीं होगे तो', 'छोड़ा उसने' आदि कविताएं कवयित्री के जिज्ञासु वृत्ति को दर्शाती है। गगन गिल की कविताओं में स्त्री का जो स्वरूप बनता है वह अत्यंत प्रखर और ह्यूमनाइज्ड है। प्रेम, शोक, घृणा, करुणा, सांसारिक मोह आदि गगन गिल की कविताओं में स्थायित्व रूप पाते हैं। वही स्थायित्व जो एक भिक्षु के चीवर धारण की आभा से प्रज्ज्वलित होती है : "सब जान लेगी वह / तुम्हारे बारे में / अपने तप से एक दिन / सुन लेगी सब बातें / तुम्हारे चीवर और / देह के बीच।"[37] बुद्धत्व के निग्रह में स्त्री अपने संसार की अलग ही व्याख्या करती है : "जितना वह हँसती है / उतना वह रुलाती है / इस घर की देवताओं को।"[38] कवयित्री का चिंतन सार्वजनीन है। एक स्त्री का सामाजिक प्रतिदान क्या हो सकता है! इस प्रश्न पर गगन गिल समस्त स्त्री जाति का मूल्यांकन करती हैं।

स्त्री-कविता में स्त्री के स्वरूप की इस विशद चर्चा से ज्ञात होता है कि कविता के लिए वर्ण्य-विषय बनने एवं कविता को स्वयं रचने तथा कविता में अपनी अंतर्दृष्टि को रचनात्मक रूप देना आदि दोनों ही स्थितियों में अंतर है। पुरुष द्वारा लिखी गई अधिकांश कविताओं में

स्त्री-शरीर की मांसलता और सहानुभूति की पात्र अबला-पुरुष अनुगामिनी रूप का ही अथवा इससे अधिक उसके रोमांटिक स्वरूप का ही चित्रण हुआ है। जब हम स्त्री द्वारा रचित साहित्य में स्त्री के स्वरूप की छवि देखें तो वह अधिक मानवीय और चेतनासंपन्न मनुष्य की तरह दिखती है। नौवें दशक के बाद की कवयित्रियों ने स्त्री के महामना रूप को, उसके मनुष्यत्व को अपनी कविताओं में स्थापित किया है। अन्याय और उत्पीड़न के अलग-अलग पौरुषिक खेल को बेनकाब करती कवयित्रियों ने समाज के प्रत्येक वर्ग के दुचित्तापन को सामने रखा है। यह दुचित्तापन अथवा दोमुंहेपन का अपना इतिहास रहा है। स्त्री-कविता उस छली इतिहास में सेंध लगाती एक नये इतिहास की मांग करती है। कविता में स्त्री की उपस्थिति उसके कद-कुल-मर्यादा यहाँ तक कि उसके शारीरिक सौष्ठव के अनुरूप ही होती थी। इतिहासकारों ने तो स्त्रियों की काव्य-प्रज्ञा को कभी मुक्त हृदय से स्वीकार ही नहीं किया। सुमन राजे अपनी पुस्तक 'इतिहास में स्त्री' में कविता में स्त्री की उपस्थिति अथवा स्त्री के स्वरूप पर चर्चा करते हुए उस ऐतिहासिक वेविकहीनता को सामने लाती हैं। वे लिखती हैं : "...कविता में स्त्री की उपस्थिति केवल उसकी कविताओं से नहीं है। उसका पद, उसकी वृत्ति, उसकी आयु, उसका कुल, उसकी वैवाहिक स्थिति, उसका सधवा या विधवा होना तथा बाँझ या पुत्रवती होना भी मानी रखता है। सिर्फ मानी ही नहीं रखता, बल्कि उसके कमजोर कहे जाने वाले पक्ष पर ही प्रहार भी किया जाता है। ये तथाकथित तथ्य उसकी कविता के लिए भी निर्णायक सिद्ध हो सकते हैं। अभी तक जो इतिहास नामक पुस्तकें हैं, उनकी तर्क-पद्धति यही है, कि स्त्रियों की लिखी रचनाएँ मिलती नहीं, मिल भी जाएँ तो वे प्रामाणिक नहीं ठहरतीं, प्रामाणिक हों तो भी कविता की दृष्टि से स्तरीय नहीं हैं, यदि स्तरीय हैं भी तो संभावना है कि उसके पति (यदि वह कवि है) के द्वारा लिखी गई हैं। यही कविता में स्त्री की उपस्थिति का मानचित्र है।"[39]

संदर्भ :

[1] गुप्त, मैथिलीशरण (नवां संस्करण : 1989). *यशोधरा*, नयी दिल्ली : सरस्वती प्रिंट्स प्रेस, पृ. 47

[2] सेठी, रेखा (पहला संस्करण : 2019). *स्त्री-कविता : पक्ष और परिप्रेक्ष्य*, नयी दिल्ली : राजकमल पेपरबैक्स, पृ. 8

[3] सेठी, रेखा (पहला संस्करण : 2019). *स्त्री-कविता : पक्ष और परिपेक्ष्य*, नयी दिल्ली : राजकमल पेपरबैक्स, पृ. 45

[4] सेठी, रेखा (पहला संस्करण : 2019). *स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व (पाठ और संवाद)*, नयी दिल्ली : राजकमल पेपरबैक्स, पृ. 54-55

[5] वही, पृ. 66-67

[6] वही, पृ. 85

[7] सेठी, रेखा (पहला संस्करण : 2019). *स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व (पाठ और संवाद)*, नयी दिल्ली : राजकमल पेपरबैक्स, पृ. 104 & 113

[8] वही, पृ. 119

[9] वही, पृ. 135

[10] राजे, सुमन (दूसरा संस्करण : 2015). *इतिहास में स्त्री*, नयी दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 113

[11] अनामिका (संपा.) (प्रथम संस्करण : 2015). *बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन : खंड-2,* नयी दिल्ली : साहित्य अकादमी, पृ. 192

[12] अनामिका (संस्करण : 2011). *कवि ने कहा चुनी हुई कविताएं*, नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, पृ. 17-18

[13] अनामिका (तीसरा संस्करण : 2009). *खुरदुरी हथेलियाँ*, दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 117

[14] अनामिका (संस्करण : 2011). *कवि ने कहा चुनी हुई कविताएं*, नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, पृ. 87

[15] वही, पृ. 14

[16] अनामिका (तीसरा संस्करण : 2009). *खुरदुरी हथेलियाँ*, दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 46

[17] अनामिका (संस्करण : 2011). *कवि ने कहा चुनी हुई कविताएं*, नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, पृ. 74

[18] वही, पृ. 10

[19] कात्यायनी (पुनर्मुद्रण : सितंबर, 2019). *सात भाइयों के बीच चम्पा,* लखनऊ : परिकल्पना प्रकाशन, पृ. 36

[20] सिंह, सविता (दूसरी आवृत्ति : 2013). *अपने जैसा जीवन*, नयी दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 41

[21] वही, पृ. 35

[22] वही, पृ. 34

[23] अनामिका (संपा.) (प्रथम संस्करण : 2015). *बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन : खंड-2,* नयी दिल्ली : साहित्य अकादमी, पृ. 317

[24] वही, पृ. 317

[25] अनामिका (संपा.) (प्रथम संस्करण : 2015). *बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन : खंड-2,* नयी दिल्ली : साहित्य अकादमी, पृ. 312

[26] रघुवंशी, नीलेश (प्रथम पेपरबैक संस्करण : 2016). *कवि ने कहा चुनी हुई कविताएं*, नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, पृ. 16

[27] रघुवंशी, नीलेश (प्रथम पेपरबैक संस्करण : 2016). *कवि ने कहा चुनी हुई कविताएं*, नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, पृ. 55

[28] जायसवाल, रंजना (संस्करण : 2009). *जिन्दगी के कागज़ पर*, नयी दिल्ली : शिल्पायन, पृ. 13

[29] वही, पृ. 14

[30] जायसवाल, रंजना (संस्करण : 2009). *जिन्दगी के कागज़ पर*, नयी दिल्ली : शिल्पायन, पृ. 29

[31] तिलक, रजनी (प्रथम संस्करण : 2014). *हवा सी बेचैन युवतियाँ*, नयी दिल्ली : स्वराज प्रकाशन, पृ. 14

[32] तिलक, रजनी (प्रथम संस्करण : 2014). *हवा सी बेचैन युवतियाँ*, नयी दिल्ली : स्वराज प्रकाशन, पृ. 15

[33] वही, पृ. 57-58

[34] गुप्ता, रमणिका (संपा.) (प्रथम संस्करण : 2015). *कलम को तीर होने दो (झारखंड के आदिवासी हिंदी कवि*), नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 220

[35] पुतुल, निर्मला (पहला सजिल्द संस्करण : 2005). *नगाड़े की तरह बजते शब्द*, नयी दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 30

[36] गिल, गगन (प्रथम (वाणी) संस्करण : 2017). *एक दिन लौटेगी लड़की*, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 11

[37] गिल, गगन (प्रथम (वाणी) संस्करण : 2017). *यह आकांक्षा समय नहीं,* नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 56

[38] गिल, गगन (प्रथम (वाणी) संस्करण : 2017). *यह आकांक्षा समय नहीं,* नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 76

[39] राजे, सुमन (दूसरा संस्करण : 2015). *इतिहास में स्त्री*, नयी दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 29